दैनिक जागरण

क्रोध धन और यश का नाश करता है

भाजपा का प्रत्याशी चयन

बिहार में बांकीपुर विधानसभा उपचुनाव में भाजपा को जिस तरह प्रत्याशी बदलना पड़ा और मध्य प्रदेश में दतिया विधानसभा उपचुनाव में खुद को संभावित प्रत्याशी मान रहे पूर्व मंत्री नरोत्तम मिश्रा के समर्थकों के विद्रोह का सामना करना पड़ा, उससे उभरे सवाल पार्टी को असहज करने वाले हैं। चूंकि बांकीपुर विधानसभा सीट भाजपा अध्यक्ष नितिन नवीन के राज्यसभा सदस्य बनने से रिक्त हुई है, इसलिए यहां होने वाले विधानसभा उपचुनाव की महत्ता बढ़ गई है। पहले भाजपा ने यहां से अभिषेक कुमार को प्रत्याशी बनाया, लेकिन उन्होंने यकायक यह कहकर अपनी उम्मीदवारी वापस ले ली कि पारिवारिक कारणों से वे चुनाव लड़ने में असमर्थ हैं। इसके बाद यहां से नीरज कुमार सिन्हा को प्रत्याशी घोषित किया गया। क्या यह विचित्र नहीं कि मात्र एक विधानसभा सीट के लिए भाजपा अपने प्रत्याशी का चयन सही तरह नहीं कर सकी? यह समझना कठिन है कि अभिषेक कुमार के सामने अचानक ऐसी क्या पारिवारिक परिस्थिति आ गई कि वे चुनाव लड़ने से पीछे हट गए? यह अनुमान लगाया जा रहा है कि उनकी पारिवारिक पृष्ठभूमि को लेकर इसी सीट से चुनाव लड़ रहे जन सुराज पार्टी के प्रत्याशी प्रशांत किशोर एक प्रेस कांफ्रेंस करने की तैयारी कर रहे थे और इसकी भनक लगते ही भाजपा ने प्रत्याशी बदलने का फैसला कर लिया। पता नहीं सच क्या है, लेकिन प्रश्न यह है कि आखिर जो बात प्रशांत किशोर को ज्ञात थी, क्या वह भाजपा नेतृत्व और विशेष रूप से इसी सीट का प्रतिनिधित्व कर चुके पार्टी अध्यक्ष नितिन नवीन को पता नहीं थी?

मध्य प्रदेश में दतिया विधानसभा क्षेत्र का मामला बांकीपुर से अलग है। यहां से पिछले चुनाव में पराजित भाजपा नेता और पूर्व गृह मंत्री नरोत्तम मिश्रा यह मानकर चल रहे थे कि उन्हें ही उम्मीदवार बनाया जाएगा। उन्होंने अपना प्रचार भी शुरू कर दिया था, लेकिन जब उनके नाम की घोषणा नहीं हुई तो उनके समर्थक विद्रोह पर उतर आए। उन्होंने सड़क जाम करने के साथ धरना-प्रदर्शन भी किया और पत्थरबाजी भी की। नरोत्तम मिश्रा के समर्थन में कई भाजपा पदाधिकारियों ने त्यागपत्र भी दे दिए। हालांकि हंगामा शांत होने के बाद नरोत्तम मिश्रा अपने समर्थकों के रवैये को सही नहीं ठहरा रहे हैं, लेकिन जो कुछ हुआ, उससे पार्टी की फजीहत तो हुई ही। यह ठीक है कि भाजपा का तेजी से विस्तार हो रहा है और जहां वह सशक्त है, वहां चुनाव लड़ने वालों की कतार लग जाती है, लेकिन दतिया का मामला औरों से अलग होने के उसके दावे पर प्रश्नचिह्न खड़े करता है। यदि भाजपा औरों से अलग एवं अनुशासित दल की अपनी छवि बनाए रखना चाहती है तो उसे प्रत्याशी चयन की कोई लोकतांत्रिक एवं नीर-क्षीर व्यवस्था बनानी ही होगी।

पर्यावरण की चिंता

मध्य हिमालयी राज्य उत्तराखंड की प्लास्टिक कचरा उन्मूलन को शुरू की गई पहल अब सकारात्मक रूप लेती नजर आ रही है। गंगोत्री से प्लास्टिक कचरे को वापस लाने को शुरू की गई डिजिटल डिपाजिट रिफंड सिस्टम की पहल अब चारों धामों एवं मुख्य पर्यटन स्थलों तक पहुंच रही है। इसके अच्छे परिणाम भी मिल रहे हैं। देखा जाए तो उत्तराखंड की पहचान केवल चारधाम, हिमालय और प्राकृतिक सौंदर्य तक सीमित नहीं है, बल्कि यह देश को अमूल्य पर्यावरणीय सेवाएं प्रदान करने वाला राज्य भी है। ऐसे में यहां पर्यावरण संरक्षण केवल सरकार की ही जिम्मेदारी नहीं, बल्कि प्रत्येक नागरिक और पर्यटक का भी दायित्व है। पिछले कुछ वर्षों में धार्मिक और पर्यटन स्थलों में प्लास्टिक कचरे की समस्या लगातार बढ़ी है। बड़ी संख्या में आने वाले श्रद्धालु और पर्यटक अनजाने या लापरवाही से प्लास्टिक की बोतलें, चिप्स के रैपर और अन्य अपशिष्ट खुले में छोड़ देते हैं। पर्वतीय क्षेत्रों में इस कचरे का निस्तारण आसान नहीं होता। इससे प्राकृतिक सुंदरता पर तो दाग लगता ही है, जलस्रोत, वन्यजीव और पारिस्थितिकी तंत्र भी संकट में पड़ते हैं। डिजिटल डिपाजिट रिफंड सिस्टम के तहत प्लास्टिक की खाली बोतलें, चिप्स के रैपर वापस करने पर धनराशि लौटाने की व्यवस्था लोगों को जिम्मेदार बनाती है और स्वच्छता को जनभागीदारी से जोड़ती है। इस मुहिम को बढ़ावा देने के लिए व्यापक जनजागरूकता, पर्याप्त संग्रह केंद्र, नियमित निगरानी और स्थानीय समुदायों की सक्रिय भागीदारी भी सुनिश्चित करनी होगी।

> प्लास्टिक कचरे का निस्तारण पर्यावरण संरक्षण की दिशा में एक अहम कदम है

बरसात में बेहाल होते शहर

संजय गुप्त

हर बरसात में देश के शहरों में लोग जल भराव और उससे जुड़ी समस्याओं से जूझते हैं। इसके बाद भी नगर निकायों के काम करने के तौर-तरीके बदल नहीं रहे हैं

अवधेश राजपूत

अल नीनो के असर के बावजूद मानसून ने देश के हर कोने में दस्तक दे दी है। इससे किसान कुछ हद तक राहत महसूस कर रहे हैं, फिर भी कई क्षेत्रों में बारिश की कमी के कारण फसल की बोआई देरी से चल रही है। फिलहाल यह नहीं कहा जा सकता कि आगे मानसून अपनी गति बरकरार रखेगा और पर्याप्त बारिश होगी। इस कारण खेती को लेकर चिंता बरकरार है और सरकार भी इसे लेकर सजग दिख रही है। मानसून के आगमन ने जहां भारत के अनेक हिस्सों में भीषण गर्मी से राहत दी है, वहीं हर वर्ष की तरह उसने नगर निकायों की पोल खोल दी है, क्योंकि देश के अनेक छोटे-बड़े शहर वर्षा जनित समस्याओं और खासकर जल भराव से त्रस्त हैं। यह कोई नई बात नहीं। दशकों से भारत के शहरों में लोग बरसात में जल भराव और उससे जुड़ी समस्याओं से जूझते हैं। इसके बाद भी नगर निकायों के काम करने के तौर-तरीके बदल नहीं रहे हैं।

हमारे नगर निकाय न तो जल भराव से निपट पा रहे हैं और न ही सीवर, नालियों और नालों को उफनने से रोक पा रहे हैं। इसी कारण बरसात होते ही जल भराव के कारण कई तरह की दुर्घटनाएं होती हैं। कहीं ट्रैफिक जाम हो जाता है, कहीं सड़कें धंस जाती हैं, कहीं करेंट उतर आता है तो कहीं लोग गड्ढों में भरे पानी या खुले मैनहोल में गिर जाते हैं। हर बारिश में न जाने कितने लोग अपनी जान गंवा देते हैं। इस बार भी ऐसा ही हुआ। बीते दिनों अकेले दिल्ली-एनसीआर में मानसून की पहली बारिश में अलग-अलग दुर्घटनाओं में छह लोग मारे गए। यह बरसात की शुरुआत का हाल है। आने वाले दिनों में जलभराव के साथ कहीं-कहीं बाढ़ की भी स्थिति देखने को मिल सकती है। इसके अलावा भारी बरसात, भूस्खलन या फिर बादल फटने की घटनाओं से भी जान-माल को नुकसान हो सकता है। केरल के जिस वायनाड में कुछ साल पहले भारी बरसात में कई लोग मारे गए थे, वहां बीते दिनों एक कंस्ट्रक्शन साइट के पास भूस्खलन से तबाही मची। इसमें तीन लोगों की मौत हो गई और कई लोग लापता बताए जा रहे हैं। इस तरह की घटनाएं हमारे नीति-नियंताओं के लिए चिंता का कारण बननी चाहिए, क्योंकि वर्षा जनित समस्याओं के चलते लोगों की जान जाने के साथ शहरी ढांचे को अच्छा-खासा नुकसान भी होता है।

आखिर क्या कारण है कि जो मानसून देश की आर्थिकी के लिए अत्यधिक जरूरी है, वही ग्रामीण से लेकर शहरी इलाकों में तमाम समस्याओं को भी जन्म देता है? छोटे शहरों की बात तो दूर रही, देश के प्रमुख महानगर तक बारिश में गंभीर समस्याओं से घिर जाते हैं और उनमें जनजीवन बाधित हो जाता है। पिछले दिनों मुंबई में तीन दिन की भारी बरसात से आफत सी आ गई। मुंबईवासियों को उन्हीं समस्याओं से फिर दो-चार होना पड़ा, जिनका सामना वे वर्षों से करते चले आ रहे हैं। इन समस्याओं से आजिज कुछ लोगों ने हाई कोर्ट का दरवाजा खटखटाया। उसने मामले की सुनवाई करते हुए यह कहा कि जब लोग फुटपाथ, नदी-नालों, सड़कों पर अतिक्रमण कर लेंगे तो यह नौबत तो आएगी ही। उसके अनुसार मुंबई के हालात सार्वजनिक बुनियादी ढांचे के दुरुपयोग के चलते खराब हुए।

देश के बड़े शहर इसलिए समस्याओं से घिर गए हैं, क्योंकि उनके बीच स्थित गांव और पुरानी बस्तियां अनियोजित विकास का पर्याय बन गई हैं। उनमें जल निकासी की उचित व्यवस्था नहीं होती और सीवेज सिस्टम भी दोयम दर्जे का होता है। कभी इन गांवों की आबादी सीमित थी, पर शहरीकरण के क्रम में उनकी आबादी हजारों और लाखों में हो गई है। आज दिल्ली-एनसीआर के कुछ गांवों में लाखों लोग रह रहे हैं। आम तौर पर ग्रामीण इलाकों से जो पलायन होता है, वह इन्हीं शहरी गांवों में आकर बसता है। नगर निकायों ने इन गांवों के आधारभूत ढांचे को ठीक करने के लिए जो कुछ किया है, वह ऊंट के मुंह में जीरे के सामान ही है। नगर निकाय और राज्य सरकारें इन शहरीकृत गांवों में अनियोजित विकास को रोक नहीं पा रही हैं। इसका एक कारण यह है कि सभासदों यानी पार्षदों के एजेंडे में सुनियोजित विकास है ही नहीं। एक विडंबना यह भी है कि लोग शहरीकरण की चुनौतियों के समाधान के इरादे से सभासदों का चुनाव मुश्किल से ही करते हैं। यही स्थिति विधायकों और सांसदों के मामले में भी है। इसके चलते शहरों की तकलीफें कम होने का नाम नहीं ले रही हैं। अपने देश में अभी भी वोट जाति-पंथ या अन्य आधार पर दिए जाते हैं, न कि प्रत्याशी की योग्यता को देखकर।

शहरों की समस्याएं बढ़ते चले जाने के कारण न केवल लोगों के शारीरिक स्वास्थ्य पर विपरीत असर पड़ता है, बल्कि मानसिक स्वास्थ्य पर भी। जो शहर जीवन को सुगम-सुविधाजनक बनाने में सक्षम होने चाहिए, वे तनाव और आपाधापी को जन्म दे रहे हैं। देश के नेता शहरीकरण के मामले में विकसित देशों के तरीके अपनाने की बातें तो खूब करते हैं, पर वैसे तरीके अपनाने की प्रतिबद्धता नहीं दिखाते। विकसित भारत के लक्ष्य को पाने के लिए मजबूत शहरी ढांचा और नियोजित शहरीकरण अत्यधिक जरूरी है, पर हमारे शहर बेतरतीब विकास का पर्याय बन गए हैं। शहरों की नींव उनका बुनियादी ढांचा होता है, लेकिन वही विकृत हो चुका है। अब जब नींव ही विकृत हो चुकी हो तो सुनियोजित विकास कैसे हो सकता है? अपने यहां यह भी देखने को मिल रहा है कि बेहतर नगर नियोजन के नाम पर जो आधारभूत ढांचा निर्मित हो रहा है, वह या तो बहुत जल्दी नाकाफी सिद्ध होता है या दोयम दर्जे का साबित होता है।

अब यह जरूरी हो गया है कि संसद में एक विशेष सत्र बुलाकर बिगड़ते शहरीकरण को संवारने के लिए कोई सार्थक बहस की जाए। इसके अतिरिक्त उन तौर-तरीकों को अपनाने की कोई ठोस रूपरेखा बनाई जाए, जिससे शहरीकरण संबंधी जो भी नियम-कानून हैं, उन पर सही तरह अमल हो। इसी के साथ नगर निकायों के प्रतिनिधियों और अधिकारियों को जवाबदेह भी बनाना होगा। यदि ऐसा नहीं किया जाता तो शहरी आबादी की समस्याएं तो बढ़ेंगी, विकसित भारत के लक्ष्य को हासिल करने में कठिनाई भी होगी। यह ध्यान रहे कि शहरों का चरमराता बुनियादी ढांचा देश की छवि को भी खराब करने का काम कर रहा है।

response@jagran.com

चंदे वाले बंदे से बातचीत

हास्य-व्यंग्य

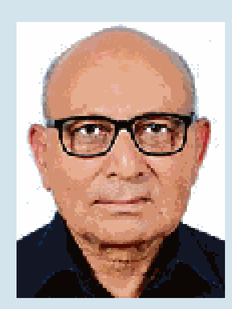

सूर्यकुमार पांडेय

धन देख भला किसके मन में लालच नहीं आ जाता है। कुबेर की सोने की लंका को देखकर रावण ने भी उसे छीन लिया था

मेरी अपने एक मित्र के साथ चढ़ावा चोरी वाले मामले पर अति गंभीर बहस चल रही थी। एक सज्जन, जिन्हें हम जानते भी नहीं थे, वह न जाने किधर से आ टपके और हमारी बहस के बीच में फांद पड़े। दरअसल कुछ लोगों की आदत होती है। ऐसे लोग दूसरों की बातचीत के बीच अपनी टांग जरूर अड़ाते हैं। वह कहने लगे कि आप दोनों ही बेकार की माथापच्ची कर रहे हैं। जिस भी वस्तु या धन का एक बार दान कर दिया जाए, उसके दानदाता को पीछे मुड़कर नहीं देखना चाहिए कि उसके दान का क्या हुआ? दान को भूल जाना ही उत्तम है। आस्था और विश्वास से बड़ा कुछ भी नहीं होता है। इनके विपरीत बात करना भी महापाप है। आप दोनों को भी महापाप लगेगा।

मैंने कहा, 'एक तो चंदा दिया, उस पर आप हमको ही पाप का भागी बना रहे हैं! यह भी कोई बात हुई!' वह बोले, 'ओ भलेमानस, तुम दोनों को पता होना चाहिए कि जिस भी वस्तु का अपनी इच्छा से त्याग कर दिया जाता है और उसको श्रद्धापूर्वक किसी और को समर्पित कर दिया जाता है, उससे मोह पालना मनुष्य को नरक का भागी बनाता है।' मैंने पूछा, 'आपने ऐसा कहां पढ़ा है?' वह बोले, 'यह शास्त्रोक्त है। मैंने पढ़ा नहीं है, ऐसा सुन रखा है।'

मेरे मित्र ने बात को आगे बढ़ाते हुए उनसे कहा, 'इस दान चोरी वाले मामले से हमारी आस्था को गहरी ठेस पहुंची है और आप कह रहे हैं कि हम भूल जाएं! हम तो तब तक नहीं भूलेंगे जब तक दोषियों को सजा नहीं मिल जाती है!' वह बोले, 'जांच चल रही है। जल्दी ही दूध का दूध और पानी का पानी हो जाएगा। मनुष्य काम, क्रोध मद, लोभ का पुतला है। धन और आभूषण को देखकर भला किसके मन में लालच नहीं आ जाता है। कुबेर की सोने की लंका को देखकर रावण ने भी उसे छीन लिया था। ये सब तो साधारण मनुष्य हैं। मोह मनुष्य के विवेक को हर लेता है। इन लोगों की भी मति मारी गई थी। और एक बात जान लीजिए कि प्रभु की इच्छा से ही रोज नए खुलासे हो रहे हैं। वह ही न्याय करेंगे। आप लोगों की बहसबाजी से कुछ नहीं मिलने वाला है।' मैंने कहा, 'अरे भाई, हमने भगवान के नाम पर चंदा दिया था। सोचा था कि आस्था की सरयू में दान का एक लोटा जल डालकर हम भी पुण्य कमा लेंगे, लेकिन हमारा दान तो किनारे पर ही गोता लगा गया। जिस बंदे को चंदा दिया था वह दूज का चांद हो गया।'

वह हंसने लगे, 'आप भी कमाल करते हैं। सुई का दान कर इतने व्यथित हैं कि जैसे आप दोनों ने अपनी सारी संपत्ति लुटा दी है। आपको तो पता ही होगा कि अपने यहां आदिकाल से ही दान की प्रथा रही है। भाई मेरे, अपना यह देश दानियों का देश है। हमारे यहां एक से एक अमर दानी हुए हैं। शिव, दधीचि, रंतिदेव, हरिश्चंद्र और कर्ण काबुल में नहीं, भारत में पैदा होते आए हैं और होते रहेंगे। गोदान, भूदान, श्रमदान से लेकर अनुदान तक दानियों के खानदान हमारी इस पावन भूमि के कण-कण में विद्यमान हैं। वह दीगर बात है कि मौका मिलते ही कुछ लोगों के भीतर पराया माल अपना वाला भाव जाग उठता है।' इतना कहकर वह सज्जन आगे बढ़ गए।

मैंने पास के ही एक गुमटी वाले से उनके बारे में जानकारी हासिल की। उसने बताया कि यह बहुत बड़े ठेकेदार हैं। मैंने पूछा कि किस चीज के ठेकेदार हैं तो वह हंसता हुआ बोला, 'ये धर्म के ठेकेदार हैं।'

response@jagran.com

ऊर्जा

कलियुग के दोष

प्रायः लोग कहते हैं कि घोर कलियुग आ गया है, जबकि वास्तविकता यह है कि इस कलियुग को भी सतयुग, त्रेतायुग और द्वापरयुग के समान बनाया जा सकता है। दरअसल कलियुग का अर्थ स्वार्थलिप्सा, झूठ-फरेब, असत्य वचन, धोखाधड़ी तथा भौतिक सुखों के लिए अनैतिक कार्य करना है। श्रीमद्भागवत पुराण के अनुसार कलियुग पांच स्थानों पर निवास करता है। पहला स्थान कपट और झूठ के साथ खेले जाने वाले जुए में, दूसरा मदिरापान में, तीसरा परस्त्रीगमन में, चौथा हिंसा में और पांचवां भौतिक वस्तुओं के प्रति आसक्ति में।

जो व्यक्ति इन कार्यों में लिप्त है, उसके लिए यह कलियुग है और यदि वह इन पांचों दोषों में डूबा हुआ है तो उसके लिए कलियुग कष्टदायक ही होगा। इसके विपरीत, जो सत्यवादी है, दूसरों की सहायता करता है, परनिंदा से दूर रहता है, मद्यपान का विरोधी है, जुआ नहीं खेलता, स्वर्ण अर्थात भौतिक वस्तुओं के संग्रह के लिए अनैतिक कार्य नहीं करता तथा पराई स्त्री पर बुरी दृष्टि नहीं रखता, उसके लिए यह कलियुग भी सतयुग के समान है। इसी प्रकार, यदि कोई व्यक्ति श्रीराम के पदचिह्नों पर चलते हुए अन्याय और अत्याचार के विरुद्ध संघर्ष करता है तो एक प्रकार से वह त्रेतायुग का जीवन जी रहा है। जो व्यक्ति कंस और दुर्योधन जैसे अधर्म के प्रतीकों के विरुद्ध संघर्ष करने वाले भगवान श्रीकृष्ण के आदर्शों पर चलता है, उसके लिए यह कलियुग भी द्वापरयुग के समान है।

इसलिए यह हमारे अपने हाथ में है कि हम किस युग के अनुरूप जीवन जीना चाहते हैं। यदि हमारा आचरण श्रेष्ठ होगा तो कलियुग भी हमें कष्ट नहीं देगा। अन्यथा हम सदा युग को दोष देते रहेंगे और स्वयं भी दुखी रहेंगे। अतः व्यक्ति को सुख और शांति से जीवन जीने के लिए कलियुग के अनैतिक आचरणों से बचना चाहिए।

सलिल पाण्डेय

तथ्य-कथ्य

ईवी वाहन वाले शीर्ष दस राज्य

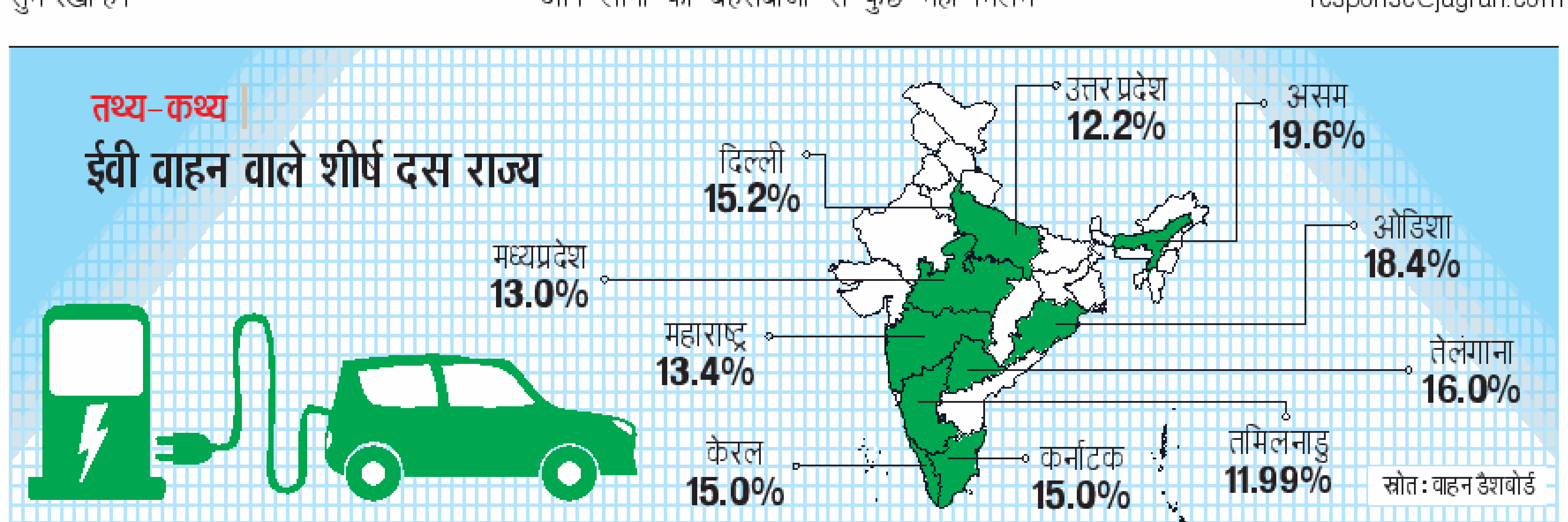

स्रोत: वाहन डैशबोर्ड

सौरमंडल के निकट पृथ्वी जैसा ग्रह संभव

मुकुल व्यास

25 प्रकाश-वर्ष दूर स्थित जीजे 3378बी नामक एक ग्रह प्रारंभिक अनुमानों में पृथ्वी जैसा है

खगोलविदों का कहना है कि जीजे 3378 बी नामक एक कम चमक वाले छोटे तारे (ड्वार्फ स्टार) का चक्कर काटने वाला एक ग्रह प्रारंभिक अनुमानों की तुलना में ज्यादा पृथ्वी जैसा हो सकता है। फ्रांसीसी खगोलविदों ने कनाडा-फ्रांस-हवाई टेलीस्कोप का उपयोग करके 2024 में इस ग्रह की पहचान की थी। जीजे 3378बी नामक यह ग्रह एक 'सुपर-अर्थ' है।

विस्तृत जांच से पता चला है कि जीजे 3378बी अपने तारे से बिल्कुल सही दूरी पर स्थित है। इसका मतलब यह हुआ कि इसकी सतह पर तरल पानी हो सकता है। बाहरी ग्रहों के रहने लायक होने की जांच-सूची में पानी पहली जरूरी चीज है। पहले इसका द्रव्यमान पृथ्वी से 5.3 गुना होने का अनुमान लगाया गया था जिसे घटाकर अब 2.3 गुना कर दिया गया है। इसका अर्थ यह है कि इस ग्रह के चट्टानी होने की संभावना बहुत ज्यादा है। सिर्फ 25 प्रकाश-वर्ष की दूरी पर होने के कारण यह आवास योग्यता की विस्तृत जांच के लिए एक आकर्षक उम्मीदवार है। खगोलविदों का कहना है कि 'यह 10-पारसेक सौर पड़ोस' में सबसे ज्यादा पृथ्वी जैसे बाहरी ग्रहों में से एक है। 10-पारसेक सौर पड़ोस अंतरिक्ष का एक गोलाकार आयतन है जो सूर्य से हर दिशा में 10 पारसेक (लगभग 32.6 प्रकाश वर्ष या 3,08,60,000 करोड़ किलोमीटर) तक फैला हुआ है। 3378बी हमारे सबसे करीबी ब्रह्मांडीय पड़ोसियों में से एक है। पच्चीस प्रकाश-वर्ष सुनने में तो बहुत दूर लगता है, लेकिन मिल्की वे आकाशगंगा लगभग 100,000 प्रकाश-वर्ष चौड़ी है, इसलिए उस लिहाज से यह हमारा पड़ोसी ही है।

ब्रह्मांड के सबसे बड़े सवालों में से एक यह है कि क्या जीवन को सहारा देने की क्षमता के मामले में पृथ्वी अकेली है। विज्ञानी उन विशेषताओं का पता लगाने की कोशिश कर रहे हैं, जो किसी ग्रह को रहने लायक बना सकती हैं। विज्ञानी सबसे पहले जिस चीज को चुनते हैं, वह है कक्षा की वह सीमा जिसे हम हैबिटेबल जोन (रहने लायक क्षेत्र) कहते हैं। यह बाहरी ग्रह और उसके मेजबान तारे के बीच की दूरी है, जो यह पता लगाने के लिए जरूरी है कि क्या उस बाहरी ग्रह की सतह पर तरल पानी हो सकता है। बहुत पास होने पर पानी भाप बन जाता है और बहुत दूर होने पर जम जाता है। शोधकर्ताओं के अनुसार इस सुपर-अर्थ को अपने मेजबान तारे से उतना ही रेडिएशन मिलता है जितना पृथ्वी को अपने सूरज से मिलता है, इसलिए यह बिल्कुल सही जगह पर है, लेकिन किसी ग्रह की सतह पर तरल पानी होने के लिए वहां वायुमंडल का होना जरूरी है। अभी हमारे पास यह जानने का कोई तरीका नहीं है कि इस ग्रह पर वायुमंडल है या नहीं, लेकिन इस शोध ने जीजे 3378बी को उन ग्रहों की सूची में सबसे ऊपर ला दिया है जिनकी जीवन के लिए उपयुक्तता की जांच की जानी है। खगोलविदों का अगला लक्ष्य इस ग्रह पर जीवन के संकेत खोजना है।

(लेखक विज्ञान के जानकार हैं)

...जैसे पेड़ खजूर

गठबंधन की राजनीति में क्षमता के आधार पर 'बड़ा भाई' और 'छोटा भाई' जैसी उपमाएं प्रचलित हैं। उत्तर प्रदेश में अपने जनाधार के बल पर समाजवादी पार्टी स्वयं को बड़ा भाई और देश की सबसे पुरानी पार्टी कांग्रेस को छोटा भाई मानते हुए उसे कम सीटें देती रही है, लेकिन पिछले दिनों कांग्रेस के नवनियुक्त प्रदेश प्रभारी राजेंद्र गौतम लखनऊ पहुंचे तो उन्होंने नया राग छेड़ दिया। उन्होंने कहा कि कांग्रेस एक राष्ट्रीय दल है, इसलिए वह बड़ा भाई है और इसी आधार पर समाजवादी पार्टी के बराबर सीटों पर चुनाव लड़ने की बात होगी। राजेंद्र गौतम तो यह बयान देकर दिल्ली लौट आए, लेकिन इसके बाद राजनीतिक प्रतिक्रियाओं का दौर शुरू हो गया। बड़े भाई के कुनबे यानी कांग्रेस के ही कई नेता इस बयान से असहज हैं, क्योंकि वे गठबंधन में किसी प्रकार की खटास नहीं चाहते। उनका कहना है कि यह न तो प्रेशर पालिटिक्स का दांव है और न ही कोई वास्तविक दावा, बल्कि केवल कार्यकर्ताओं का मनोबल बढ़ाने वाला 'मोरल बूस्टर डायलाग' है। वहीं समाजवादी पार्टी के नेताओं को कुरेदने पर चर्चा का निचोड़ संत कबीर के इस प्रसिद्ध दोहे में झलकता है-"बड़ा हुआ तो क्या हुआ, जैसे पेड़ खजूर। पंथी को छाया नहीं, फल लागे अति दूर।"

राजरंग

फुटपाथ और राजनीति

पालिटिक्स थ्रू गवर्नेंस यानी ऐसा शासन, जिससे राजनीति भी सधे। यूं तो यह नरेन्द्र मोदी का माडल माना जाता है, लेकिन इन दिनों इसकी झलक बेंगलुरु में भी दिखाई दे रही है। सिद्दरमैया के बाद कर्नाटक के मुख्यमंत्री बने डीके शिवकुमार ने अपने मंत्रिमंडल में मंत्री कृष्णा बायरे गौड़ा को ग्रेटर बेंगलुरु की जिम्मेदारी सौंपी है। कार्यभार संभालते ही गौड़ा ने सबसे पहले बेंगलुरु के फुटपाथों पर ध्यान केंद्रित किया। एक अभियान के रूप में फुटपाथों से अतिक्रमण हटाया जा रहा है। बताया जाता है कि एक महीने के भीतर 20-25 किलोमीटर फुटपाथ अतिक्रमणमुक्त कराए जा चुके हैं। अभियान तेजी से चल रहा है और मंत्री स्वयं इसकी लगातार निगरानी कर रहे हैं। फुटपाथों पर अतिक्रमण से शहरी नागरिक कितने परेशान होते हैं, यह पूरा देश जानता है। अतिक्रमण हटते ही गौड़ा के प्रशंसकों का हुजूम उमड़ने लगा है। बात यहीं तक नहीं रुकी। भाजपा के सांसद लहर सिंह ने भी खुलेआम इस अभियान की प्रशंसा कर दी। भाजपा के कई विधायक भी दबे स्वर में इसकी सराहना कर रहे हैं, लेकिन मामला केवल सुशासन का नहीं है। पदभार संभालते ही जिस तेजी से यह अभियान शुरू हुआ है, उसका राजनीतिक संदेश भी अलग माना जा रहा है। दरअसल अगले तीन-चार महीने में नगर निगम के चुनाव होने हैं। बेंगलुरु सामान्यतः भाजपा का गढ़ माना जाता रहा है, लेकिन एक ओर शिवकुमार के हाथ में नेतृत्व और दूसरी ओर गौड़ा के फुटपाथ अभियान ने जिस तरह माहौल बदला है, उससे यह अटकलें लगनी शुरू हो गई हैं कि कहीं बेंगलुरु भाजपा के हाथ से न निकल जाए। भाजपा को यह भी देखना होगा कि फुटपाथ इतने चिकने न हो जाएं कि पार्टी ही फिसल जाए।

तालिबान दोस्त की चिंता

भारत और अफगानिस्तान के बीच नजदीकियां इन दिनों रफ्तार पकड़ रही हैं। आए दिन तालिबान सरकार का कोई न कोई मंत्री या प्रतिनिधि दिल्ली की उड़ान भर रहा है। भारतीय विदेश मंत्रालय पुराने रणनीतिक संबंधों और 'अटूट दोस्ती' के तकाजे को ध्यान में रखते हुए बैठकों, मुलाकातों और सहयोग के हर संभव प्रयास में जुटा है, लेकिन जब बात खान-पान की आती है तो मामला 'हलाल' पर आकर ठहर जाता है। हाल ही में एक अफगान मंत्री की टीम ने स्पष्ट कर दिया कि वे केवल हलाल प्रमाणित भोजन ही ग्रहण करेंगे। वैसे इसमें कोई असामान्य बात नहीं है, लेकिन भारतीय परिस्थितियों में यह विषय संवेदनशील माना गया। काफी विचार-विमर्श के बाद बीच का रास्ता निकाला गया और कुछ 'विशेष व्यवस्थाएं' की गईं। उनकी विस्तृत जानकारी तो गोपनीय है, लेकिन पाठक सहज ही इसका अनुमान लगा सकते हैं। यह समस्या केवल सरकारी मेहमानों तक सीमित नहीं है। जब अफगानिस्तान के व्यापारी दल दिल्ली या मुंबई में कारोबारी संगठनों के साथ बैठकों में शामिल होते हैं, तब भी इसी प्रकार की व्यवस्था करनी पड़ती है।

संस्थापक-स्व. पूर्णचन्द्र गुप्त, पूर्व प्रधान संपादक-स्व. नरेन्द्र मोहन. नॉन एग्जीक्यूटिव चेयरमैन-महेन्द्र मोहन गुप्त. प्रधान संपादक-संजय गुप्त, जागरण प्रकाशन लि. के लिए: नीतेन्द्र श्रीवास्तव द्वारा 501, आई.एन.एस. बिल्डिंग, रफी मार्ग, नई दिल्ली-110001 से प्रकाशित और उन्हीं के द्वारा डी-210, 211, सेक्टर-63 नोएडा-201309 से मुद्रित, संपादक (राष्ट्रीय संस्करण)-विष्णु प्रकाश त्रिपाठी*
दूरभाष: नई दिल्ली कार्यालय : 011-43166300, नोएडा कार्यालय : 0120-4615800. E-mail: delhi@nda.jagran.com. R.N.I. No. DELHIN/2017/74721 * इस अंक में प्रकाशित समस्त समाचारों के चयन एवं संपादन हेतु पी.आर.बी. एक्ट के अंतर्गत उत्तरदायी. समस्त विवाद दिल्ली न्यायालय के अधीन ही होंगे। हवाई/रेल शुल्क ₹-2 अतिरिक्त।

57 प्रतिशत के आसपास भारतीय उपभोक्ता इंसानों से बातचीत के बजाय एआइ-आधारित टूल को प्राथमिकता दे रहे हैं, जो इसके वैश्विक स्तर (39 प्रतिशत) से कहीं बहुत अधिक है।

आजकल

मंदिर चोरी पर चुप क्यों नए सनातनी

अनंत विजय
anant@nda.jagran.com

पिछले लगभग एक माह से देश की राजनीति में श्रीरामजन्मभूमि मंदिर फिर से चर्चा के केंद्र में है। वस्तुतः चढ़ावा चोरी बेहद निंदनीय कृत्य एवं अपराध है, जिसकी व्यापक जांच जारी है। वहीं देश में ऐसे भी अनेक मामले सामने आ चुके हैं जिनमें पूरा मंदिर ही चोरी कर लिया गया, लेकिन आज चढ़ावा चोरी पर बोलने वाले दलों के नेता मंदिर चोरी पर कुछ नहीं बोल रहे हैं। ऐसे में मंदिर चोरी से जुड़े मामलों और उस पर चुप्पी साधे रखने वाले दलों और नेताओं के बारे में भी हमें जानना-समझना चाहिए

मथुरा स्थित श्रीकृष्णजन्मभूमि (दाएं) और उसी से सटा हुआ शाही मस्जिद ईदगाह। फाइल

अयोध्या स्थित प्रभु श्रीरामजन्मभूमि मंदिर में चढ़ावा चोरी की जांच से अधिक तेजी से इस प्रकरण पर राजनीति हो रही है। श्रीराम मंदिर में चढ़ावा चोरी की घटना निंदनीय है। दोषियों को कठोरतम सजा होनी चाहिए। इस चोरी की सजा जितनी जल्दी हो उतना ही अच्छा। सरकार को चाहिए कि वह विशेष जांच दल (एसआइटी) को एक निश्चित समयावधि में जांच पूर्ण करने का आदेश निर्गत करे। उसकी रिपोर्ट के आधार पर पुलिस अपनी जांच कर कोर्ट में रिपोर्ट सौंपे। उसकी सुनवाई के लिए फास्ट ट्रैक कोर्ट का गठन करके दोषियों को सजा दी जाए। इस मामले में न्याय होना जितना आवश्यक है, उतना ही आवश्यक है न्याय होते दिखना। चढ़ावा चोरी प्रकरण पर कई राजनीतिक दल के नेता स्वयं को सनातनी साबित करने पर तुले हुए हैं। कोई किसी को रामघाती बता रहा है तो कोई सुंदरकांड का पाठ करवा रहा है। किसी को प्रभु श्रीराम की आस्था पर हुई चोट की चिंता हो रही है तो कोई भक्तों की आहत भावना की चिंता कर रहा। राजनीति के रंगमंच पर हर दिन श्रीराम भक्ति के नए आयाम प्रस्तुत किए जा रहे हैं। जो दल श्रीराम को किस्से कहानियों का चरित्र मानते थे, श्रीरामजन्मभूमि पर अस्पताल और स्कूल खोलने की वकालत किया करते थे, आज उनकी भी आस्था प्रभु श्रीराम में द्विगुणित हो गई है। जिस प्रकार की राजनीति चढ़ावा चोरी को लेकर हो रही है, उसमें सभी राजनीतिक दल स्वयं को सच्चा सनातनी कहते हुए नहीं थक रहे हैं। यह भारतीय राजनीति का एक नया अध्याय है।

इस पूरे प्रकरण पर जिस प्रकार की राजनीति हो रही है, उससे सबसे बड़ा प्रश्न यह खड़ा हो रहा है कि चढ़ावा चोरी बड़ी चोरी है या फिर मंदिर चोरी बड़ी है। वस्तुतः भारत का इतिहास इस बात का साक्षी है कि किस तरह से लुटेरों ने हमारे आस्था के केंद्र मंदिरों को लूटा। केवल लूटकर ही नहीं छोड़ा, बल्कि लूटने के बाद मंदिरों को ध्वस्त भी किया। ध्वस्त करने के बाद उस स्थान पर मस्जिदें और ईदगाह बनाई गईं। चढ़ावा चोरी के बाद जो राजनीतिक दल इस मसले पर राजनीतिक फसल काटना चाहते हैं, उनमें से अधिकतर ने मंदिर चोरों की पैरोकारी की है। कभी चुप रहकर तो कभी मुखर होकर। सबसे पहले बात करते हैं गुजरात के सोमनाथ मंदिर की। वर्ष 1026 से लेकर 1706 तक कई लुटेरों ने सोमनाथ मंदिर को लूटा। गजनी, खिलजी, मुजफ्फर शाह, औरंगजेब ने सोमनाथ मंदिर को लूटा भी और मंदिर को तोड़ा भी। स्वाधीन भारत में जब सोमनाथ मंदिर के लुटेरों और ध्वंस के दाग को मिटाने का प्रयास हुआ तो कांग्रेस के उस समय के नेता नेहरू ने उसका परोक्ष विरोध किया था।

जब भी इस प्रकरण की बात उठती है तो पंडित नेहरू और डा. राजेन्द्र प्रसाद के बीच के पत्र व्यवहार की याद आती है। 10 मार्च, 1951 को राजेन्द्र बाबू ने नेहरू को लिखा, 'मैं देखता हूं कि सोमनाथ मंदिर के उद्घाटन समारोह के साथ संबद्ध होने का मेरा विचार आपको पसंद नहीं, क्योंकि इसमें अनेक बातें अंतर्निहित हैं। आपको लगता है कि इस समारोह में मेरे जुड़ने से हो सकता है कि कुछ लोगों को यह विचार पसंद नहीं आए कि जिस मंदिर को उस समय के मुसलमान आक्रमणकारियों ने अनेक बार तोड़ा, उसका पुनर्निर्माण या पुनरुद्धार किया जाए। मैं समझता हूं, आप मानेंगे कि यह रुख अपनाना उचित नहीं है, खासकर जबकि सरकार इसपर कुछ खर्च नहीं कर रही है। मैं समझता हूं कि इस निमंत्रण को अस्वीकार करने का कोई अर्थ नहीं है।' (डा. राजेन्द्र प्रसाद कारस्पोंडेंस... खंड 14, पृष्ठ 37) ऐसे में हमें एक बार फिर से विचार करना चाहिए कि स्वाधीन भारत में चढ़ावा चोरी बड़ा अपराध है मंदिर चोरी।

श्रीरामजन्मभूमि के मामले में तो पूरे देश ने देखा कि जब जन्मभूमि को मुक्त करवाने का आंदोलन चल रहा था तो कांग्रेस और अन्य राजनीतिक दलों का क्या रुख था। अदालतों में प्रभु श्रीराम के बारे में किस तरह की बातें कही गईं, पूरे देश को अब भी याद है। जब श्रीरामजन्मभूमि स्थित विवादित ढांचा गिरा था, उसके बाद जिस तरह की राजनीति हुई, वह भी स्मृतियों में है। संसद में श्रीरामजन्मभूमि में विराजमान रामलला को अनआथोराइज्ड तक कहा गया। समाजवादी पार्टी नेता रामगोपाल वर्मा ने तो यहां तक कह दिया था कि जो गुंबद पर चढ़ गए थे, वो नीचे उतर नहीं सके। उनको इस बात की चिंता भी नहीं थी कि हिंदू मतदाता उनकी पार्टी को वोट देंगे या नहीं। उसी समाजवादी पार्टी के नेता अब सनातनी और रामभक्त होने का दावा करते हुए घूम रहे हैं। श्रीरामजन्मभूमि स्थित मंदिर की भी तो चोरी ही हुई थी। उसके बाद वहां मस्जिद बना दी गई थी। चढ़ावा चोरी पर हमलावर राजनीतिक दल के नेता मंदिर चोरी पर एक शब्द भी नहीं बोल पाते थे। डा. राजेन्द्र प्रसाद ने जवाहरलाल नेहरू को जो लिखा, उसका एक वाक्य देखा जाना चाहिए- 'कुछ लोगों को यह विचार पसंद नहीं आए कि जिस मंदिर को उस समय के मुसलमान आक्रमणकारियों ने अनेक बार तोड़ा, उसका पुनर्निर्माण या पुनरुद्धार किया जाए। मुसलमान आक्रमणकारियों या मंदिर चोरों के प्रति नरम रुख दिखा कर वर्षों तक मुस्लिम वोट की राजनीति होती रही। काशी विश्वनाथ मंदिर को लेकर भी यही रुख रहा है। वहां भी यही सारे दल मंदिर चोरों के पक्ष में दिखते हैं।

मथुरा स्थित श्रीकृष्ण जन्मभूमि को लेकर भी ताजा-ताजा रामभक्त हुए राजनीतिक दलों का रुख भी देखना चाहिए। इस बात का उल्लेख इतिहास की तमाम पुस्तकों और वृत्तांतों में मिलता है कि वर्ष 1670 में औरंगजेब ने मथुरा के केशवदेव मंदिर का ध्वंस कर वहां शाही ईदगाह बनवाया था। क्या यह हिंदू मंदिर की चोरी नहीं थी। पूरे मंदिर की चोरी करके वहां ईदगाह बनवा दिया गया। औरंगजेब की मृत्यु के बाद अंग्रेजों ने उस स्थान की नीलामी कर दी। नीलामी में बनारस के राजा पटनीमल ने यह जमीन खरीदी थी। कालांतर में उद्योगपति जुगल किशोर बिड़ला ने पटनीमल के वारिसों से यह जमीन खरीद ली। उनके साथ उस समय जयदयाल डालमिया और हनुमान प्रसाद पोद्दार भी थे। बाद में उस स्थान पर रामकृष्ण डालमिया ने केशवदेव का मंदिर बनवाया। मंदिर बनने से लेकर 1968 तक कांग्रेस का क्या रुख रहा, यह बताने की आवश्यकता नहीं है।

आज भी श्रीकृष्णजन्मभूमि स्थित कारावास में जाने पर स्पष्ट लगता है कि मंदिर चोरों ने हिंदुओं के इस पवित्र स्थल पर डाका डाला था। क्या स्वाधीनता के बाद इन मंदिर चोरों के कृत्यों पर कार्रवाई नहीं होनी चाहिए थी? लेकिन नहीं हुई। क्योंकि इससे मुस्लिम वोट बैंक के छिटकने का खतरा था। आज जो भी राजनीतिक दल सनातनी होने का दावा कर रहे हैं, उनको मंदिर चोरों पर भी अपना रुख स्पष्ट करना चाहिए। उचित तो यह होगा कि सनातनी होने का दावा करनेवाली पार्टियां श्रीकृष्णजन्मभूमि के मामले में भी सनातनी रुख अपनाएं और उसको मुक्त करने के अभियान में साथ आएं। बयानों में सनातनी दिखने से बेहतर होगा कि अपने कर्मों में सनातनी दिखें। क्योंकि कर्म की प्रधानता का अपना महत्व है।

बौद्धिक परंपरा

शास्त्रार्थ की अपरिहार्यता

सिद्धेश्वर शुक्ल
वरिष्ठ पत्रकार

भारतीय सभ्यता की सबसे महत्वपूर्ण विशेषताओं में से एक उसकी समृद्ध ज्ञान परंपरा रही है। इस परंपरा में आध्यात्मिक चिंतन के साथ-साथ दर्शन, राजनीति, अर्थशास्त्र, न्याय, चिकित्सा, साहित्य, तथा जीवन के विविध आयामों पर गंभीर विमर्श और शास्त्रार्थ की सुदीर्घ परंपरा विकसित हुई। इसी परंपरा का परिष्कृत और सुव्यवस्थित स्वरूप है- शास्त्रार्थ।

बीते दिनों 'मन की बात' कार्यक्रम में प्रधानमंत्री ने शास्त्रार्थ को वाद, संवाद और मंथन की एक अनुशासित एवं ज्ञानोन्मुख प्रक्रिया के रूप में रेखांकित किया। उन्होंने इसे तकनीक-प्रधान युग में युवाओं को अपनी सांस्कृतिक एवं बौद्धिक जड़ों से जोड़ने का एक सशक्त माध्यम बताया तथा देश के विश्वविद्यालयों से आह्वान किया कि वे शास्त्रार्थ की इस पद्धति को शिक्षा व्यवस्था में समाविष्ट करने की संभावनाओं पर गंभीरतापूर्वक विचार करें।

वर्तमान में भारत में शिक्षा, प्रशिक्षण तथा पेशेवर व्यवहार में प्रयुक्त अधिकांश शोध-पद्धतियां, सिद्धांत और माडल विदेशी स्रोतों एवं प्रतिमानों पर आधारित हैं। यह आयातित बौद्धिक उत्पाद मुख्यतः यूरोप-अमेरिकी विद्वानों द्वारा उनके समाजों और आवश्यकताओं के अनुरूप किए गए अनुभवजन्य अध्ययनों पर आधारित है, जो भारतीय सामाजिक-सांस्कृतिक परिप्रेक्ष्य में प्रायः उपयुक्त नहीं होते। परिणामस्वरूप, शिक्षा का एक बड़ा भाग केवल प्रतिरूपों की पुनरावृत्ति तक सीमित हो जाता है और विद्यार्थियों की स्वतंत्र चिंतन-क्षमता तथा रचनात्मकता बाधित होने लगती है।

जब किसी समाज की शिक्षा व्यवस्था उसकी अपनी सांस्कृतिक और बौद्धिक परंपराओं से कट जाती है, तब विद्यार्थी धीरे-धीरे अपने ही ज्ञान-संसार के प्रति उदासीन होने लगते हैं। विदेशी बौद्धिक दृष्टिकोणों के अत्यधिक प्रभाव से अनेक बार विद्यार्थियों में अपनी संस्कृति और राष्ट्र के प्रति हीन भावना विकसित हो जाती है तथा 'विदेशी मूल की श्रेष्ठता'' का भ्रम जन्म लेता है। यदि इस प्रवृत्ति को समय रहते संतुलित न किया जाए, तो यह भारतीय ज्ञान प्रणाली के प्रति अविश्वास अथवा उपेक्षा तक पहुंच सकती है। भारत की विशाल और समृद्ध ज्ञान-परंपरा के होते हुए भी यह एक विडंबना है कि अंतरराष्ट्रीय बौद्धिक जगत में हमारी भूमिका प्रायः केवल एक उपभोक्ता तक सीमित दिखाई देती है।

वर्तमान समय सूचना-विस्फोट, वैचारिक ध्रुवीकरण और डिजिटल संचार का युग है। इंटरनेट मीडिया और त्वरित संप्रेषण माध्यमों ने संचार को तीव्र बनाया है, किंतु इसके साथ असत्य, भ्रम, दुष्प्रचार और भावनात्मक उकसावे की चुनौतियां भी बढ़ी हैं। ऐसे समय में शास्त्रार्थ की पद्धति अत्यंत प्रासंगिक हो उठती है, क्योंकि यह किसी भी निष्कर्ष तक पहुंचने से पूर्व प्रमाण, तर्क और विभिन्न दृष्टिकोणों के परीक्षण पर बल देती है। यदि विद्यार्थियों को केवल सूचनाएं देने के स्थान पर प्रश्न, प्रतिप्रश्न और विमर्श की पद्धति से शिक्षित किया जाए, तो उनमें विश्लेषणात्मक क्षमता, स्वतंत्र चिंतन और अभिव्यक्ति-कौशल का विकास होगा। साथ ही, यह पद्धति युवाओं, बालिकाओं और महिलाओं में तार्किक प्रतिरक्षा शक्ति विकसित कर उन्हें साइबर अपराध, दुष्प्रचार और भावनात्मक छल से बचाने में भी सहायक सिद्ध हो सकती है।

पोस्ट

दतिया और बांकीपुर विधानसभा सीट पर हो रहे उपचुनाव के लिए उम्मीदवार चुनने के तरीके ने स्पष्ट कर दिया कि भाजपा में सब जितना अच्छा दिखता है, उतना है नहीं। सहमति बनाने, प्रत्याशी तय करने में भाजपा बुरी तरह से चूक गई।
हर्ष वर्धन त्रिपाठी@MediaHarshVT

फैजाबाद बार एसोसिएशन ने राम मंदिर में चढ़ावा चोरी के आरोपितों की पैरवी न करने का जो प्रस्ताव पारित किया, वह पूरी तरह गलत है। वे संविधान के प्रविधानों और सुप्रीम कोर्ट के निर्देशों के खिलाफ नहीं जा सकते। याद रहे कि अजमल कसाब को भी बचाव के लिए वकील दिया गया था।
आरके विज @ipsvijrk

भारत में 62 प्रतिशत रेजिडेंट डाक्टर लगातार 36 घंटे से अधिक काम करते हैं, 86 प्रतिशत गंभीर नींद की कमी से जूझ रहे हैं, 97 प्रतिशत को एक प्रवेश-स्तर के सिविल सेवक से भी कम वेतन मिलता है और 76 प्रतिशत डाक्टर ड्यूटी के दौरान हिंसा या मारपीट का शिकार होते हैं। हम स्वयं को वास्तव में सभ्य समाज तभी कह सकेंगे, जब हम अपने डाक्टरों के साथ वैसा ही सम्मान और संवेदनशीलता का व्यवहार करें, जैसा वे हमारे साथ करते हैं।
आनंद रंगनाथन@ARanganathan72

डाक्टरों के साथ आप जब भी हिंसा करते हैं, आप उन्हें मजबूर करते हैं कि वे गंभीर मरीज देखते ही उसे बड़े अस्पताल रेफर कर दें।
डा. अनुज कुमार@dranuj_k

रचनाकर्म

एआइ का विकास और विस्तार

ब्रह्मानंद मिश्र

यह पुस्तक आर्टिफिशियल इंटेलिजेंस के उद्भव, विकास और विस्तार तक अनेक प्रकार के प्रश्नों के जवाब देती है और मशीन लर्निंग, एल्गोरिदम, डाटा, एआइ माडल के बारे में फैले भ्रमों का भी निवारण करती है...

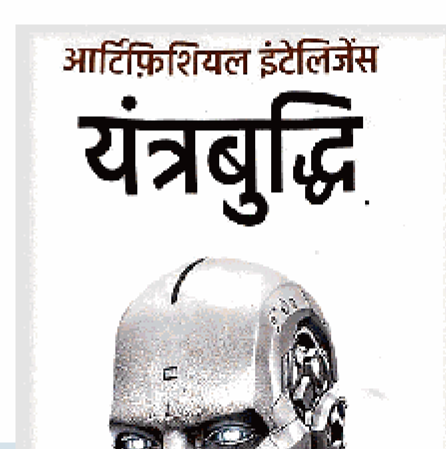

पुस्तक : आर्टिफिशियल इंटेलिजेंस : यंत्रबुद्धि
लेखक : बालेन्दु शर्मा दाधीच
प्रकाशक : एक्सप्लोर बुक्स
मूल्य : 699 रुपये

नवंबर, 2022 के अंतिम दिन दुनिया पहली बार चैटजीपीटी के नाम से परिचित हो रही थी। इसके बाद मशीनी दिमाग के साथ इंसानों के संवाद का तरीका बदल गया। उन दिनों चैटजीपीटी के साथ कुछ सवालों ने भी जन्म लिया था, जो आज भी स्थायी रूप से चर्चा में हैं, मसलन क्या मशीन और इंसान की समझ का फर्क सिमट रहा है, क्या एआइ नौकरियों के लिए खतरा है, क्या डिजिटल दुनिया में गोपनीयता और विश्वास का संकट बढ़ रहा है? और सबसे बड़ा सवाल तो यही है कि एआइ काम कैसे करता है और इसे बनाया ही क्यों गया है? ऐसी ही कुछ गुत्थियों की सुझलन है- बालेंदु शर्मा दाधीच की नई पुस्तक 'यंत्रबुद्धि'।

पुस्तक में एआइ के विविध पहलुओं को स्पष्ट होते देख सकते हैं। वर्ष 1956 में आयोजित डार्टमथ सम्मेलन में पहली बार कृत्रिम बुद्धिमत्ता का वैचारिक व सैद्धांतिक आधार तैयार हुआ। यही वह दौर था, जब कुछ ही वर्ष पहले ब्रिटिश विज्ञानी एलन ट्यूरिंग ने यंत्रबुद्धि के विकास और उसकी संभावित क्षमताओं की कल्पना कर ली थी। पुस्तक की शुरुआत इसी रोचक कहानी के साथ होती है। शुरुआती अध्याय एआइ की धारणा के विकास के बारे में बताते हैं और स्पष्ट करते हैं कि शुरुआती दौर में यंत्रबुद्धि के बारे में हमारे सोच की सीमाएं क्या थीं। कैसे ट्यूरिंग इस बात के प्रतीक बन गए कि एक अकेला विचार मानव इतिहास को कैसे नई दिशा और नया आकार दे सकता है।

लेखक क्रमवार औद्योगिक क्रांति के हासिल के बारे में बताते हुए एआइ, रोबोटिक्स, आटोमेशन, इंटरनेट आफ थिंग्स जैसी भविष्य की उम्मीदों के बारे में भी उपयोगी जानकारियां देते हैं। आज एआइ का तीव्रतर विस्तार महज अहम तकनीकी घटना और पड़ाव भर नहीं है, बल्कि सर्जनात्मकता की एक औद्योगिक क्रांति है। रोबोट और ड्रोन इंसानों का काम आसान कर रहे हैं। कुछ नौकरियां खत्म हो रही हैं, तो कुछ नई आ रही हैं। हमारी जिंदगी तेजी से बदल रही है, पर यह भी सच है कि बेहतर जीवन की मृग मरीचिका अंतहीन बनी रहेगी। मशीनों ने जिस तरह शारीरिक श्रम को कम कर दिया, वैसे ही यंत्रबुद्धि मानसिक बोझ को हल्का करती जाएगी।

दशकों से आर्टिफिशियल इंटेलिजेंस शब्द के लिए प्रयोग होने वाले कृत्रिम बुद्धिमत्ता की जगह यहां 'यंत्रबुद्धि' का प्रयोग किया गया है, यह तार्किक भी है। आर्टिफिशियल के लिए नकली या कृत्रिम शब्द प्रयोग करने के बजाय 'मशीन' या 'यंत्र' शब्द उपयुक्त है। वर्ष 1950 से ही एआइ शब्द का प्रयोग हो रहा है, उससे बाहर निकलना संभव नहीं है।

पुस्तक मशीन लर्निंग, एल्गोरिदम, डाटा, एआइ माडल के बारे में फैले भ्रम से भी बाहर निकालती है। लेखक ने एआइ के साथ भाषाई विशिष्टताओं की गुत्थी को भी सुझलाने का सफल प्रयास किया है। कुछ वर्ष पहले एआइ से लेख लिखवाने, बच्चों का होमवर्क कराने, कविता-कहानी लिखने का जो प्रयोग शौकिया तौर पर शुरू हुआ था, वह हर दिन के साथ कैसे आगे बढ़ रहा है, इसकी व्यावहारिक जानकारी यहां दिखती है। पुस्तक में चैटजीपीटी, जेमिनी, कोपायलट जैसे चैटबाट के अनुप्रयोग की जानकारी है। साथ ही, इंडिया एआइ मिशन, भाषिणी, सर्वम एआइ, कृत्रिम एआइ, भारतजीपीटी के जरिये देश में कैसे एआइ के विकास और विस्तार की नींव तैयार हो रही है, इसकी बहुत अच्छे ढंग से चर्चा की गई है। पुस्तक जेनरेटिव एआइ व कापीराइट की चिंताओं, एआइ के पूर्वाग्रह, डाटा और प्राइवेसी, जिम्मेदार और जवाबदेह एआइ के विकास की चर्चाओं को कठिन और वैज्ञानिक शब्दावली से मुक्त होकर सहजता से समझाने में सफल होती है।

भारतीय लोकतंत्र का काला अध्याय

कन्हैया झा

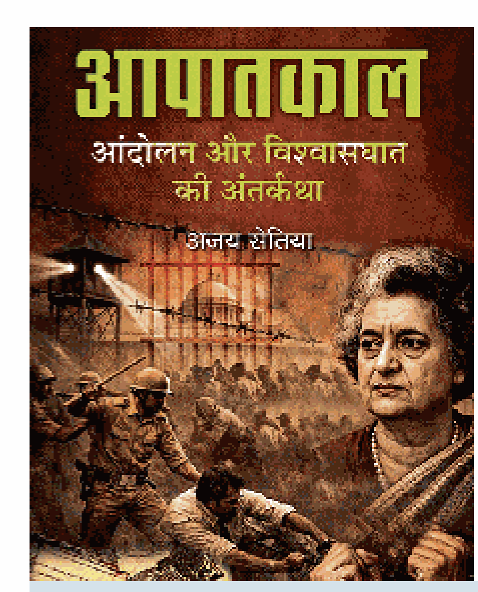

पुस्तक : आपातकाल : आंदोलन और विश्वासघात की अंतर्कथा
लेखक : अजय सेतिया
प्रकाशक : प्रभात प्रकाशन
मूल्य : 500 रुपये

भारत के लोकतांत्रिक इतिहास में 25 जून, 1975 को सर्वाधिक काले दिवस के रूप में माना जाता है, क्योंकि इसी दिन देश में आपातकाल लागू किया गया था। वस्तुतः वर्तमान पीढ़ी ने आपातकाल के बारे में केवल सुना है, लेकिन इसे क्यों लगाया गया, इस बारे में भी वे जानना चाहते हैं। यह तभी संभव है, जब ऐसी पुस्तकें उपलब्ध हों, जो आपातकाल के इतिहास पर तथ्यपरक तरीके से इस घटनाक्रम को विश्लेषित करें। हालांकि पिछले वर्ष ही आपातकाल के 50 साल पूरे हुए हैं, अतः इस विषय पर अनेक पुस्तकें लिखी गई हैं, फिर भी यह पुस्तक 'आपातकाल : आंदोलन और विश्वासघात की अंतर्कथा' इसलिए अधिक उपयोगी है, क्योंकि अधिकांश पुस्तकों में आपातकाल के संघर्ष पर ध्यान नहीं दिया गया है। ऐसे में यह पुस्तक पाठक को उस दौर में पहुंचाती है, जब जयप्रकाश नारायण ने संपूर्ण क्रांति का आह्वान किया था। पुस्तक में जेपी के संघर्ष की कहानी का व्यापक रूप से उल्लेख किया गया है।

पुस्तक में 35 अध्याय हैं, जिनमें से कुछ प्रमुख इस प्रकार हैं : जब सिंहासन डोलने लगा, संघ का भूमिगत आंदोलन, संजय गांधी ही सरकार थे, स्वतंत्रता सेनानियों की पीड़ा, सत्याग्रहियों को क्रूर यातनाएं, जेपी की आमरण अनशन की धमकी, तिहाड़ में बनी जनता पार्टी और रेलवे आंदोलन। पुस्तक में इंदिरा गांधी की तानाशाही के विरुद्ध बनी विपक्ष की एकजुटता से विश्वासघात की अंतर्कथा का भी उल्लेख किया गया है। आपातकाल की समाप्ति के दौर में भारतीय राजनीति में किस तरह के परिवर्तन सामने आए, लेखक ने उनका भी जिक्र किया है, जिसमें जनता पार्टी की सरकार के गठन की प्रक्रिया भी शामिल है। पुस्तक के लेखक पत्रकार हैं, लिहाजा उन्होंने इसे अधिक रोचक बनाने के लिए इसे कहानी शैली में लिखा है, जो पठनीय है।

जागरण जनमत

कल का परिणाम

क्या कोच गौतम गंभीर की प्रयोगधर्मिता भारतीय टीम पर भारी पड़ रही है?

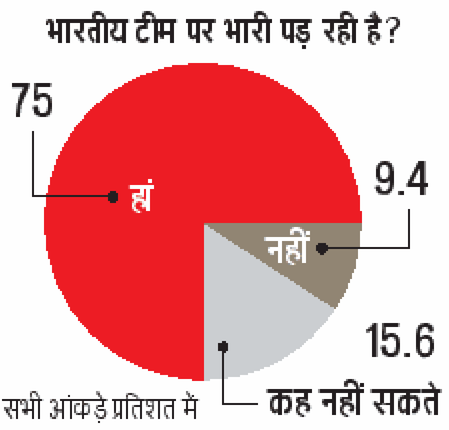

सभी आंकड़े प्रतिशत में

आज का सवाल

क्या ई-20 ईंधन के खिलाफ कुछ लोग जानबूझकर दुष्प्रचार अभियान चला रहे हैं?

परिणाम जागरण इंटरनेट संस्करण के पाठकों का मत है

जनपथ

आना मुश्किल हो रहा जब डीजल-पेट्रोल,
तब तो समझो भाइयों एथनाल का रोल।
एथनाल का रोल अगर तुम समझ न पाओ,
कुआँ तेल का आप स्वयं के घर खुदवाओ!
यदि ईंधन उत्पाद बना सकता है दाना,
क्यों चहिए पेट्रोल बंधु बाहर से आना??

-ओम प्रकाश तिवारी

तहजीब का मानवीय आख्यान

यतीन्द्र मिश्र

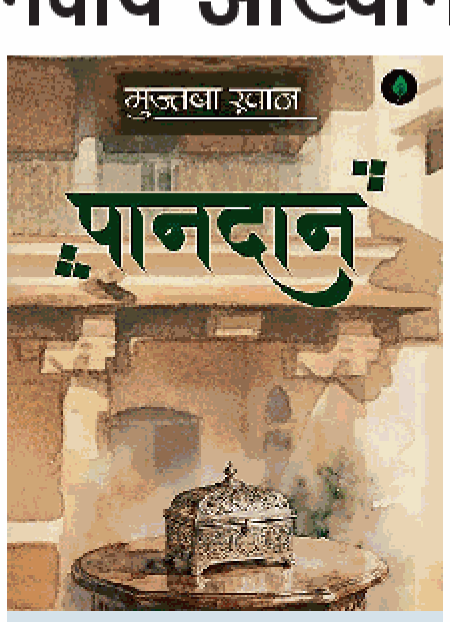

पुस्तक : पानदान
लेखक : मुज्तबा खान
प्रकाशक : युवान बुक्स, दिल्ली
मूल्य : 199 रुपये

हर तहजीब अपनी कुछ ऐसी निशानियां पीछे छोड़ जाती है, जिनमें पीढ़ियों की स्मृतियां, संस्कार और जीवन-मूल्य सुरक्षित रहते हैं। कभी वे किसी पुराने खत में मिलती हैं, कभी धुंधली पड़ चुकी तस्वीर में, कभी किसी पुराने संदूक में और कभी एक साधारण-से पानदान में। मुज्तबा खान ने इस मामूली-सी घरेलू वस्तु को अपने उपन्यास 'पानदान' का केंद्रीय प्रतीक बनाकर स्वतंत्रता के दो-तीन दशक बाद के उत्तर भारतीय मुस्लिम समाज की उस सांस्कृतिक दुनिया को साकार किया है, जहां घरों की पहचान दौलत से नहीं, रिश्तों की ऊष्मा, रवायतों की नफासत और उन्हें पीढ़ी-दर-पीढ़ी सहेजने वाली स्त्रियों से होती थी। यहां 'पानदान' पान रखने की एक साधारण संदूकची नहीं, पीढ़ियों से चली आती सांस्कृतिक विरासत का प्रतीक है। इस विरासत की विश्वसनीय संरक्षक हैं मुमताज बेगम, जिन्हें सब स्नेह से 'बी' कहकर पुकारते है। कम उम्र में विवाह, परिवार की बदलती आर्थिक-सामाजिक परिस्थितियां उन्हें गहरे मानवीय धरातल पर खड़ा करता है।

उपन्यास की बड़ी उपलब्धि इसके पात्र हैं, जो हमारे आस-पास के मनुष्य लगते हैं। मेहराज की बालसुलभ जिज्ञासा, उतावलापन और दुनिया को समझने की बेचैनी कथा में एक अलग ही ऊर्जा भर देती है। नसीम का परिवार के लिए निजी इच्छाओं का त्याग हो या फहीम (बौने) का बाहरी मसखरापन, जिसके भीतर एक निर्मल मन धड़कता है। फरीदन और रुखसाना घरेलू लय को विस्तार देती हैं, लल्लन मियां, मुंशी जी, बशारत और मुईन खां जैसे पात्र मिलकर उस सामाजिक ताने-बाने को पूर्णता देते हैं, जहां हर व्यक्ति अपने गुण-दोष, सपनों, सीमाओं और संघर्षों के साथ उपस्थित है। घरों की बनावट, बोलचाल, रस्में, खान-पान, रिश्तों का अनुशासन और रोजमर्रा के जीवन की छोटी-छोटी बारीकियां मिलकर एक जीवंत लोक रचती हैं, जिसकी गरमाहट देर तक मन में बनी रहती है। कथा में करुणा है, विनोद है, स्मृति है, विडंबना है और जीवन के प्रति एक गहरा विश्वास भी। नफासत, मिठास और किस्सागोई की सहज रवानी से सजी भाषा तथा जीवन के निकट संवाद पात्रों के स्वभाव और उस समय की सांस्कृतिक बुनावट को सजीव कर देते हैं। पारिवारिक जीवन में निहित स्त्री-समर्पण, मानवीय संवेदना और बदलते समय के साथ धुंधलाती सांस्कृतिक स्मृतियों को गहरी आत्मीयता से उद्घाटित करता उपन्यास।

उसके गीतों से जमाने को संवारे जाओ

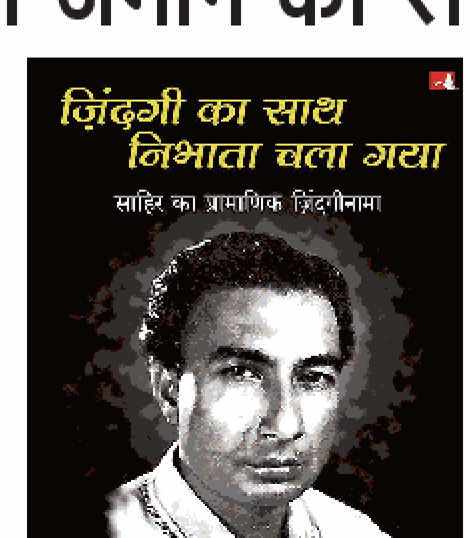

पुस्तक : जिंदगी का साथ निभाता चला गया
लेखक : राजेश बादल
प्रकाशक : मंजुल पब्लिशिंग हाउस
मूल्य : 499 रुपये

लगभग 15 वर्षों के शोध के बाद तैयार साहिर का यह प्रमाणिक जिंदगीनामा उनके जीवन को उन अनुभवों, रिश्तों, संघर्षों और ऐतिहासिक परिस्थितियों के आलोक में देखने का अवसर देती है, जिन्होंने एक मासूम अब्दुल हई को साहिर लुधियानवी बनाया। एक ऐसा पिता, जो अपने बेटे को शिक्षा से दूर रखना चाहता था, एक ऐसी मां, जिसने सामंती वैभव और वैवाहिक सुरक्षा को ठुकराकर आत्मसम्मान का मार्ग चुना, अदालत में अपने बेटे के भविष्य के लिए संघर्ष किया और अपने गहने बेचकर उसकी शिक्षा सुनिश्चित की, यही वे बीज हैं, जिनसे आगे चलकर विद्रोह, करुणा और मनुष्यता से संपन्न काव्य-दृष्टि जन्म लेती है, जिसने उपमहाद्वीप की संवेदना को गहरे तक आंदोलित किया। 1921 में लुधियाना में जन्मे साहिर का बचपन, शिक्षा, युवावस्था, रूमानियत का दौर, मित्र मंडली, अमृता प्रीतम के साथ शुरुआती रिश्ता और लाहौर में जीवन के अनेक पड़ाव पुस्तक में दर्ज हैं।

स्वतंत्रता से पहले ही उनकी कलम अन्याय, शोषण और असमानता के विरुद्ध मुखर हो चुकी थी, जिसका तेवर स्वतंत्रता के बाद भी बरकरार रहा। विभाजन के बाद जब वे हिंदुस्तान आए, तब देश सांप्रदायिक हिंसा, विस्थापन, गरीबी, भुखमरी और बेरोजगारी से जूझ रहा था। ऐसे में साहिर ने अपने समय की सामाजिक, राजनीतिक और मानवीय विडंबनाओं को अपनी रचनाओं का केंद्र बनाया। बंबई के संघर्षपूर्ण दिन, फिल्मी दुनिया की यारी-दोस्ती, गीतों के पीछे की दास्तानें पढ़ना बेहद दिलचस्प है।

निजी जीवन में रंजो-गम उनका लगातार पीछा करते रहे। सुधा मल्होत्रा के साथ निकटता हो या अमृता प्रीतम के साथ अधूरा रिश्ता- लेखक सभी प्रसंगों को संतुलन से प्रस्तुत करते हैं। लोकप्रियता के शिखर पर खड़े साहिर भीतर से उतने ही अकेले थे। उनके जीवन में अनेक स्त्रियां आईं, पर मां की प्रबल इच्छा के बावजूद उनका घर कभी बस न सका। साहिर का कलाम 'तार्रुफ रोग हो जाए तो उस का भूलना बेहतर' (खूबसूरत मोड़) मानो उनके अपने जीवन का सार समेटे हुए है, जो अनेक संबंधों, बिछोहों और अंतर्द्वंद्वों से होकर गुजरता है।

1980 में उनकी सांसें थम गईं, किंतु उनकी कलम आज भी उतनी ही बेबाकी से अपने समय से मुखातिब है। उनकी कालजयी रचनाओं के साथ उन्हें समर्पित चुनिंदा गीत इस जिंदगीनामे को और आत्मीय बनाते हैं।

पहली तिमाही में डीमार्ट का शुद्ध लाभ 11 प्रतिशत बढ़ा

नई दिल्ली: रिटेल चेन डीमार्ट की संचालन एवेन्यू सुपरमार्ट लिमिटेड को चालू वित्त वर्ष की पहली तिमाही (अप्रैल-जून 2026) 860.44 करोड़ रुपये का शुद्ध लाभ हुआ है। इसमें पिछले वित्त वर्ष की समान अवधि के 772.81 करोड़ रुपये की तुलना में 11.33 प्रतिशत की बढ़ोतरी रही है। बीती तिमाही के दौरान कंपनी का संचालन राजस्व भी 14.9 प्रतिशत बढ़कर 18,794.53 करोड़ रुपये रहा है। अप्रैल-जून 2025 तिमाही के दौरान कंपनी का संचालन राजस्व 16,359.70 करोड़ रुपये रहा था। (प्रेट्र)

वैश्विक इलेक्ट्रानिक्स उद्योग तेजी से बढ़ रहा है। ऐसे में 150 अरब डालर के इलेक्ट्रानिक्स निर्यात का लक्ष्य हासिल करने के लिए भारत को एक भरोसेमंद नीति की जरूरत है।

- राजेश अग्रवाल, वाणिज्य सचिव

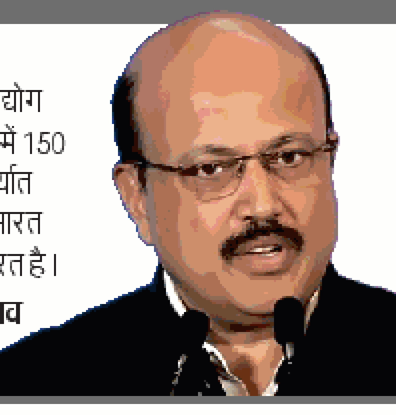

आयकर विभाग से मिला है धारा 245 का नोटिस तो रिफंड में कटौती संभव

आयकर रिटर्न (आइटीआर) सफलतापूर्वक दाखिल करने के बाद करदाताओं को आमतौर पर 4-5 सप्ताह के अंदर रिफंड मिल जाता है। हालांकि, इस दौरान कई करदाताओं को आयकर विभाग से धारा-245 का नोटिस मिल जाता है। इस नोटिस का सीधा मतलब है कि आपका इनकम टैक्स रिफंड अटक सकता है या फिर उसमें कटौती हो सकती है। आइए जानते हैं कि यह धारा 245 का नोटिस क्या है और रिफंड में कटौती क्यों हो सकती है...

क्या है धारा-245

आयकर कानून की धारा 245 के तहत आयकर विभाग को यह अधिकार है कि अगर किसी करदाता पर पिछले आकलन वर्ष का कोई कर बकाया है तो वह उसे मौजूदा वर्ष के रिफंड से समायोजित कर सकता है। इसका मतलब यह है कि आपने पिछले किसी एक या अधिक वर्ष का टैक्स नहीं चुकाया है या मांग बकाया है कि उसको मौजूदा वर्ष के रिफंड से समायोजित कर लिया जाएगा।

रिफंड पर रोक या कटौती के कारण

- पुराने टैक्स का बकाया रह जाना
- गलत आइटीआर फाइलिंग या मिसमैच होना
- टीडीएस या टैक्स क्रेडिट में अंतर मिलना
- आइटीआर आकलन के बाद बनी नई कर मांग डिमांड
- ऐसे मामलों में आयकर विभाग पहले नोटिस भेजता है और फिर तय प्रक्रिया के तहत रिफंड समायोजित करता है

नोटिस मिलने के बाद क्या करें?

आयकर विभाग की ओर से मिले धारा-245 के नोटिस को नजरअंदाज करना करदाताओं को भारी पड़ सकता है। इस नोटिस का करदाता को आमतौर पर 30 दिन के भीतर जवाब देना होता है। नोटिस मिलने पर करदाता आयकर विभाग के पोर्टल पर लाग-इन करें और 'रेस्पांस टू आउटस्टैंडिंग डिमांड' सेक्शन खोलें। यह पर आयकर विभाग की मांग को या तो स्वीकार करें या अस्वीकार करें। यदि आप आयकर विभाग की मांग से सहमत हैं तो रिफंड उसी में समायोजित हो जाएगा। अगर आप मांग से असहमत है तो आपको जरूरी दस्तावेजों के साथ जवाब देना होगा।

कौन-कौन से दस्तावेज देने होंगे

आयकर विभाग की मांग से असहमति जताए जाने पर करदाता को आपने दावे के पक्ष में फार्म 16 या फार्म 16ए, फार्म 26एएस, एआइएस, टीआइएस, निवेश के सुबूत, कटौती प्रमाणपत्र, टैक्स भुगतान चालाना, कैपिटल गेन्स की गणना, ब्याज के प्रमाणपत्र और आय की गणना जैसे दस्तावेज पेश करने होंगे। इसके अलावा करतादाओं को फाइल किए गए रिटर्न की कापी, धारा 143(1) के तहत प्रोसेसिंग की सूचना, सुधार के लिए आवेदन, आयकर विभाग के साथ बातचीत और पहले की कर मांगों से जुड़े रिकार्ड भी अपने पास रखने चाहिए। अच्छी तरह से रखे गए रिकार्ड करदाता की स्थिति को काफी मजबूत बनाते हैं, खासतौर पर तब जब वे सुधार की मांग कर रहे हों या किसी गलत समायोजन का विरोध कर रहे हों।

समायोजन के बाद भी देना पड़ सकता है टैक्स

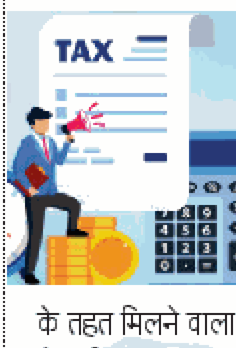

कई मामलों में करदाता को आयकर विभाग से पूरा रिफंड मिलने की उम्मीद होती है, लेकिन धारा-245 के तहत समायोजन के बाद करदाता को कुछ नहीं मिलता है। अगर बकाया टैक्स ज्यादा है तो पूरा रिफंड समायोजित होने के बाद करदाता को अलग से टैक्स भी देना पड़ सकता है। धारा-245 के तहत मिलने वाला नोटिस आइटीआर की प्रक्रिया का हिस्सा है। ऐसे में सही समय पर जवाब देकर और टैक्स रिकार्ड को अपडेट रखकर आप अपने रिफंड को बचा सकते हैं।

जागरण इन्फो

1.7 करोड़ से ज्यादा आइटीआर दाखिल

नई दिल्ली, प्रेट्र: आयकर विभाग ने शनिवार को बताया कि आकलन वर्ष 2026-27 के लिए अब तक 1.7 करोड़ से ज्यादा आइटीआर दाखिल हो चुके हैं। वित्त वर्ष 2025-26 की आय के लिए आइटीआर-1 और आइटीआर-2 के जरिये रिटर्न दाखिल करने की अंतिम तिथि 31 जुलाई है। आयकर विभाग ने एक्स पोस्ट में बताया कि बीते शुक्रवार को 10 लाख से अधिक रिटर्न दाखिल किए गए।

आइटीआर-1 या सहज एक आसान फार्म है जो छोटे और मध्यम आकार के करदाताओं के लिए है। सहज फार्म वे व्यक्ति भर सकते हैं जिनकी सालाना आय 50 लाख रुपये तक है और जिनकी आय का स्रोत वेतन, एक घर की प्रापर्टी और सालाना 5,000 रुपये तक की खेती से होने वाली आय है। आइटीआर-2 उन व्यक्तियों और हिंदू अविभाजित परिवारों (एचयूएफ) की ओर से भरा जाता है जिनकी आय कारोबार या पेशे से होने वाले लाभ से नहीं होती, बल्कि कैपिटल गेन्स (पूंजीगत लाभ) से होती है।

खबरों को नजरअंदाज न करें

मैंने कई बार लिखा है कि दिनभर की हेडलाइन आपके पोर्टफोलियो की दोस्त नहीं होतीं। आज जो खबर सबसे बड़ी लगती है, एक साल बाद उसका शायद ही कोई मतलब रह जाए। जो निवेशक हर खबर पर प्रतिक्रिया देता है, अक्सर वही सबसे ज्यादा नुकसान उठाता है। मैं आज भी इस बात पर कायम हूं। लेकिन कुछ हफ्ते पहले एक ऐसी घटना हुई, जिसे मैं अनदेखा नहीं कर पाया। उसका आपके पैसे से सीधा रिश्ता नहीं है, फिर भी उसने मुझे सोचने पर मजबूर कर दिया। बात शुरू हुई

धीरेंद्र कुमार, संपादक, हिंदी डाट वैल्यूरिसर्चआनलाइन डाट काम

बोनस

एलन मस्क की कंपनी स्पेसएक्स की लिस्टिंग और उससे जुड़ी एक दिलचस्प बातचीत से।

मेरे एक दोस्त ने एक शाम मुझे समझाया कि उसकी नजर में यह पूरा रास्ता आखिर में कहां जाकर रुकता है। मेरे दोस्त ने कहा कि धरती पर भारी धातुओं की हर खान, सोने, निकल और लोहे का हर वो स्रोत जो हमने कभी खोदा, असल में किसी बहुत पुराने एस्टेरायड के टकराने की जगह है। उसी का एक छोटा-सा टुकड़ा, सदियों पहले यहां आकर जमीन में दफन हो गया था। ये धातुएं कभी शुरू से हमारी थीं ही नहीं। ये तो आसमान से गिरी थीं। और वहां अंतरिक्ष में, जहां से ये आईं, यही चीजें इतनी मात्रा में मौजूद हैं कि धरती की सबसे अमीर खान भी उनके आगे कुछ नहीं ठहरती।

यहां से यह पूरी बात एक-एक करके आगे बढ़ती है। जब आप ऊपर उन चट्टानों से कच्चा माल निकालने ही लगे हैं, तो उसे इतनी दूर से, धरती की गुरुत्वाकर्षण की गहरी खाई में नीचे तक ढोकर लाने का कोई खास तुक नहीं बनता। तो अगला कदम है, अंतरिक्ष में ही चीजें बनाना, जहां सूरज के ज्यादा करीब होने की वजह से ऊर्जा लगभग मुफ्त है और बेहिसाब भी। ऐसे में पूरी औद्योगिक कड़ी को ऊपर अंतरिक्ष में ही रहने दो और सिर्फ तैयार चीजों को नीचे आने दो।

पर कहानी का अंत वो हिस्सा है जो सबसे ज्यादा मेरे मन में बैठ गया। अगर भारी उद्योग धरती के बाहर सस्ते में चलाया जा सके तो फिर धरती को चीजें बनाने की जगह बने रहने की जरूरत ही नहीं रहती। यह दोबारा वही जगह बन सकती है जहां हम फसलें उगाते हैं और जहां हम सुकून से रहते हैं। खदानें, भट्टियां और धुआं, सब यहां से पूरी तरह हट चुके होंगे और सिर्फ तैयार चीजें चुपचाप ऊपर से उतरती रहेंगी। मेरे दोस्त का कहना है कि असल में यही वो मंजिल है, जिसकी तरफ यह पूरा सिलसिला बढ़ रहा है।

सच कहूं तो मुझे खुद समझ नहीं आ रहा कि इस बात का करूं क्या। मेरी पूरी कामकाजी जिंदगी ऐसे बड़े-बड़े सपनों की हवा निकालने में ही बीती है। लोग हमें बरसों से भविष्य के सपने दिखाते आए हैं। उड़ने वाली कारें हों या चांद पर छुट्टियां, वे हमेशा बस एक दशक दूर ही रहीं। ऐसी भविष्यवाणियों पर सबसे सुरक्षित दांव यही होता है कि वे या तो समय से पहले होती हैं, बहुत महंगी साबित होती हैं या फिर गलत निकलती हैं। फिर भी, इस बार मैं उस बातचीत को महज शोर कहकर टाल नहीं पाया। शायद इसलिए लगा कि यह बात आपसे साझा करनी चाहिए।

कभी-कभी अपने पोर्टफोलियो से नजर हटाकर यह सोचना भी जरूरी है कि आने वाले समय में दुनिया कितनी बदल सकती है। हम टैक्स, म्यूचुअल फंड और पोर्टफोलियो की बहस में उलझे रहते हैं, क्योंकि यही हमारे अगले कुछ साल तय करते हैं। लेकिन अगर मेरे दोस्त की बातों का थोड़ा-सा हिस्सा भी सच निकला, तो आने वाला बदलाव औद्योगिक क्रांति जितना बड़ा हो सकता है।

एक नजर में

कल सरकारी बैंकों के प्रमुखों से मिलेंगी वित्त मंत्री

नई दिल्ली: वित्त मंत्री निर्मला सीतारमण सोमवार को सरकारी बैंकों के प्रमुखों से मुलाकात करेंगी। इस दौरान वे बैंकों की ओर से विदेशी मुद्रा जमा जुटाने की प्रक्रिया में हुई प्रगति की समीक्षा करेंगी। आरबीआइ ने पिछले महीने ही नई विदेशी मुद्रा अनिवासी (बैंक) जमाओं पर ब्याज सीमा को हटाया है। (प्रेट्र)

एलेक्जेंडर जार्ज मुथूट को सफल उत्तराधिकारी पुरस्कार

नई दिल्ली: द मुथूट ग्रुप के संयुक्त मैनेजिंग डायरेक्टर एलेक्जेंडर जार्ज मुथूट को हुरुन इंडिया ने प्रतिष्ठित "टाप 50 सफल उत्तराधिकारी पुरस्कार" से सम्मानित किया है। यह सम्मान उन्हें भारत के सबसे सम्मानित पारिवारिक बिजनेस समूह में से एक को मजबूत और बदलने की दिशा में उनके बेहतरीन नेतृत्व और शानदार योगदान के लिए दिया गया है। (वि.)

बीते सप्ताह शुद्ध खरीदार रहे एफपीआइ

सप्ताह के दौरान विदेशी पोर्टफोलियो निवेशकों ने 14,449 करोड़ के शेयर खरीदे

जागरण न्यूज नेटवर्क, नई दिल्ली: बीते चार महीने से लगातार बिकवाली करने वाले विदेशी पोर्टफोलियो निवेशक (एफपीआइ) बीते सप्ताह शुद्ध खरीदारी रहे हैं। नेशनल सिक्योरिटीज डिपाजिटरी लिमिटेड (एनएसडीएल के डाटा के अनुसार, बीते सप्ताह एफपीआइ ने 14,449.17 करोड़ रुपये के शेयरों की शुद्ध रूप से खरीदारी की है। इससे जुलाई में अब तक कुल खरीदारी बढ़कर 15,157 करोड़ रुपये पर पहुंच गई है। खास बात है कि बीते सप्ताह के दौरान पांचों कारोबारी सत्रों में एफपीआइ शुद्ध खरीदार रहे हैं।

एनएसडीएल के डाटा के अनुसार, इस ताजा खरीदारी के साथ कैलेंडर वर्ष 2026 में एफपीआइ की कुल निकासी घटकर 2,59,115 करोड़ रुपये हो गई है। एफपीआइ ने इससे पहले जून, मई, अप्रैल और मार्च में क्रमशः 49,340 करोड़ रुपये, 32,963 करोड़ रुपये, 60,847 करोड़ रुपये और 1,17,775 करोड़ रुपये के शेयरों की बिकवाली की थी। कैलेंडर वर्ष 2026 की पहली छमाही के दौरान एफपीआइ पांच महीनों में शुद्ध बिकवाल और केवल फरवरी माह में शुद्ध खरीदार रहे हैं।

आइएएनएस के अनुसार, पिछले सप्ताह के दौरान घरेलू संस्थागत निवेशक (डीआइआइ) भी पिछले सप्ताह शुद्ध खरीदार रहे हैं और उन्होंने 8,280 करोड़ रुपये के शेयरों की खरीदारी की है।

- सप्ताह के दौरान पांचों सत्रों में खरीदार रहे एफपीआइ
- 2026 में अब तक 2.59 लाख करोड़ हुई कुल निकासी

बीते सप्ताह निवेश (करोड़ रुपये में)

छह जुलाई	2276.32
सात जुलाई	848.33
आठ जुलाई	1570.71
नौ जुलाई	9488.75
दस जुलाई	265.06

(स्रोत: एनएसडीएल)

8,280 करोड़ रुपये के शेयर खरीदे घरेलू संस्थागत निवेशकों ने बीते सप्ताह

सरकारी बांड में बढ़ रहा निवेश

विदेशी निवेशकों को आकर्षित करने के लिए सरकार और आरबीआइ के उपायों के चलते सरकारी बांड या डेट एफएआर में लगातार निवेश बढ़ रहा है। जुलाई में अब तक डेट एफएआर में 6,625 करोड़ रुपये का निवेश हो चुका है। इस श्रेणी में इससे पहले जून में 21,652 करोड़ रुपये और मई में 4,405 करोड़ रुपये का निवेश मिला था। 2026 में अब तक इस श्रेणी में 42,890 करोड़ रुपये का निवेश हो चुका है। इसके अलावा, सामान्य सीमा वाले डेट में भी जुलाई में 3,338 करोड़ रुपये का निवेश हुआ है।

शांति को बढ़ावा देने वाली कंपनियों में निवेश का मौका

नई दिल्ली, एएनआइ: देश के दिग्गज स्टाक एक्सचेंज एनएसई की सूचकांक सेवाप्रदाता सब्सिडियरी एनएसई इंडिसेज लिमिटेड ने निफ्टी 500 अहिंसा सूचकांक लांच किया है। यह एक नया थीम-बेस्ड सूचकांक है जो निफ्टी 500 की उन कंपनियों में निवेश का मौका देता है जिनके कारोबार 'अहिंसा' के सिद्धांतों के अनुरूप और शांति को बढ़ावा देने वाले हैं।

यह सूचकांक उन निवेशकों के लिए है जो ऐसी कंपनियों के शेयरों में निवेश करना चाहते हैं जो जानवरों को नुकसान पहुंचाने वाली गतिविधियों में शामिल नहीं हैं। इसे अहिंसा फाउंडेशन के साथ मिलकर उनके अहिंसा निवेश आंदोलन फ्रेमवर्क के आधार पर विकसित किया गया है। यह फ्रेमवर्क कंपनियों को ग्रीन, आरेंज व रेड श्रेणी में बांटता है। ग्रीन श्रेणी वाली कंपनियां ही निवेश के लिए योग्य होती हैं।

राष्ट्रीय फलक

39 नई दवाओं की खुदरा कीमतें तय, मिलेगी किफायती दवा

नई दिल्ली, एएनआइ: नेशनल फार्मास्युटिकल प्राइसिंग अथारिटी (एनपीपीए) ने 39 नई दवा फार्मूलेशन की खुदरा कीमतें तय कर दी हैं। इनमें हाई ब्लड प्रेशर, डायबिटीज, एचआइवी, हृदय रोग और आंखों के संक्रमण जैसी बीमारियों के इलाज में इस्तेमाल होने वाली दवाएं शामिल हैं। ड्रग्स (प्राइस कंट्रोल) आर्डर, 2013 (डीपीसीओ) के तहत तय की गई इन कीमतों से मरीजों को दवाएं निर्धारित और किफायती दरों पर मिल सकेंगी। हालांकि, एनपीपीए ने स्पष्ट किया है कि यह दवाओं के दाम घटाने का फैसला नहीं, बल्कि उनकी अधिकतम खुदरा कीमत तय करने की प्रक्रिया है।

एनपीपीए के अनुसार, उच्च रक्तचाप के इलाज में इस्तेमाल होने वाली एम्लोडिपिन, बिसोप्रोलोल और टेलमिसारटन की संयुक्त टैबलेट की कीमत 14.74 रुपये प्रति टैबलेट तय की गई है। वहीं, आंखों की सर्जरी के बाद होने वाले बैक्टीरियल संक्रमण के इलाज में उपयोग होने वाले नेपाफेनाक और मोक्सिफ्लोक्सासिन आई ड्राप की कीमत 68.64 रुपये प्रति मिलीलीटर तथा हार्ट अटैक और स्ट्रोक के जोखिम को कम करने वाली क्लोपिडोग्रेल, एस्पिरिन और एटोरवास्टैटिन कैप्सूल की कीमत 6.37 रुपये प्रति कैप्सूल निर्धारित की गई है।

अथारिटी ने सभी दवा विक्रेताओं और डीलरों को निर्देश दिया है कि वे निर्माताओं से प्राप्त मूल्य सूची को दुकान में ऐसी जगह प्रदर्शित करें, जहां ग्राहक उसे आसानी से देख सकें। साथ ही चेतावनी दी गई है कि यदि कोई निर्माता या मार्केटिंग कंपनी निर्धारित कीमत से अधिक वसूली करती है तो उसे डीपीसीओ, 2013 और आवश्यक वस्तु अधिनियम, 1955 के तहत अतिरिक्त वसूली गई राशि ब्याज सहित जमा करनी होगी।

- हाई ब्लड प्रेशर, डायबिटीज, एचआइवी, हृदय रोग और आंखों के संक्रमण की दवाएं तय कीमत पर उपलब्ध होंगी
- दवा दुकानों पर मूल्य सूची प्रदर्शित करना अनिवार्य, अधिक कीमत वसूलने पर कार्रवाई होगी

प्रतीकात्मक

महाराष्ट्र एफडीए ने कैडिला फार्मास्युटिकल्स की कुछ दवाओं की बिक्री पर लगाई रोक

नई दिल्ली, आइएएनएस : महाराष्ट्र फूड एंड ड्रग एडमिनिस्ट्रेशन (एफडीए) ने कैडिला फार्मास्युटिकल्स लिमिटेड की कुछ दवाओं की बिक्री और वितरण पर रोक लगा दी है। साथ ही लगभग 2.45 करोड़ रुपये का स्टाक जब्त किया है। उन्हें चिंता थी कि एक जैसी ब्रांडिंग से दवा देने या लेने में गलती हो सकती है। यह कार्रवाई एसिलाक 150, एसिलाक 150 प्लस, एसिलाक 300 और एसिलाक 300 प्लस से जुड़ी है। इनकी ब्रांडिंग लगभग एक जैसी है, लेकिन इनमें अलग-अलग एक्टिव फार्मास्युटिकल इंग्रीडिएंट्स हैं। एफडीए के अनुसार, एसिलाक 150 और एसिलाक 300 को शुरू में एक्टिव इंग्रीडिएंट के तौर पर रैनीटिडिन के साथ मंजूरी दी गई थी। बाद में कंपनी ने एसिलाक 150 प्लस और एसिलाक 300 प्लस पेश किए, जिनमें फैमोटिडिन था। इनकी ब्रांडिंग लगभग एक जैसे रखे गए, बस 'प्लस' का निशान जोड़ा गया। दवा के ब्रांड नाम से होने वाले किसी भ्रम के कारण डाक्टर, फार्मासिस्ट या मरीज को गलत दवा मिल सकती है, जो सार्वजनिक स्वास्थ्य के लिए एक गंभीर चिंता का विषय है।

बच्चे के लिए मंगवाया गया इंस्टेंट फूड भी दूषित

प्रथम पृष्ठ से आगे

सबसे गंभीर मामला एक शिशु के इंस्टेंट फूड से जुड़ा है। शिकायत के अनुसार, ग्राहक द्वारा इस दूषित पैकेट वापस करने के बाद, कंपनी ने वही खराब प्रोडक्ट दोबारा सप्लाई कर दिया। इसके अलावा, 'अक्षयकल्प आर्गेनिक एग' सड़ा हुआ और बदबूदार पाया गया, जो इंसानों के खाने लायक बिल्कुल नहीं था। 'काके दा पराठा' से भी दुर्गंध आ रही थी और कई हेल्थ सप्लीमेंट अपनी एक्सपायरी डेट पार करने के बाद भी ग्राहकों को थमा दिए गए। जांच में यह भी सामने आया है कि इस प्लेटफार्म पर कई फूड बिजनेस आपरेटर बिना वैध एफएसएसएआइ लाइसेंस नंबर या गलत नाम से लिस्टेड हैं। इन जानलेवा लापरवाहियों की शिकायत पर भी कंपनी ने ठोस सुधारात्मक कदम नहीं उठाए। एफएसएसएआइ ने अब स्विगी इंस्टामार्ट से विस्तृत स्पष्टीकरण और अनुपालन रिपोर्ट मांगी है।

प्रबल प्रताप की हरकत से परिवार स्तब्ध, दोस्त बोले-उसका कृत्य समझ से परे

जागरण संवाददाता, इटावा

सुप्रीम कोर्ट में सुनवाई के दौरान हंगामा करने वाले याची प्रबल प्रताप सिंह यादव की हरकत से उसका परिवार स्तब्ध है। वहीं दोस्तों का कहना है कि प्रबल शांत स्वभाव का है। उसने सुप्रीम कोर्ट में ऐसा कृत्य क्यों किया, यह उनकी समझ में नहीं आ रहा है।

भरथना तहसील निवासी प्रबल प्रताप सिंह यादव ने शुक्रवार को सुप्रीम कोर्ट में सुनवाई के दौरान कागज फेंक कर हंगामा किया था और अपशब्द कहे थे। उसके पिता सुरेंद्र सिंह यादव किसान हैं। गांव में प्रबल को शांत स्वभाव का माना जाता है। उसकी इस अप्रत्याशित हरकत से पूरा परिवार सदमे में है। मां कुंती देवी ने बताया कि बेटे प्रबल प्रताप से शुक्रवार शाम को छह बजे बात हुई थी, जिसमें उसने सोने की बात कहते हुए फोन करने से मना किया था। मां ने बताया कि एलएलबी करने के लिए वह दो वर्ष पहले लखनऊ विश्वविद्यालय चला गया था। 12 मई को ताऊ रविंद्र सिंह यादव के हृदय का आपरेशन आगरा में हुआ था। तब प्रबल भी साथ में ही था और वहां से वह दिल्ली चला गया था। इसके बाद लौट कर घर नहीं आया।

- इटावा निवासी याची ने सुप्रीम कोर्ट में किया था हंगामा, कहे थे अपशब्द
- स्वजन ने कहा-लखनऊ विश्वविद्यालय से कर रहा है एलएलबी की पढ़ाई

सुप्रीम कोर्ट में शुक्रवार को याचिकाकर्ता प्रबल प्रताप को काबू में करता सुरक्षाकर्मी। वीडियोग्रैब

ऐसे किया घोटाला, प्लांट की जगह राइस मिल में उतारा

प्रथम पृष्ठ से आगे

राइस मिल के मालिक सौरभ संचेती और उसके पिता गंभीर संचेती फरार हैं। पुलिस का मानना है कि उनकी गिरफ्तारी से कई परतें खुलेंगी। जांच आगे बढ़ी तो करीब एक हफ्ते बाद दो ट्रक सिवनी की एक राइस मिल में खाली मिले। इस तरह जांच में सिवनी की राइस मिलों को भी शामिल किया गया है। हेराफेरी की तह तक जाने के लिए 50 से अधिक ट्रक मालिक, ट्रक चालक, राइस मिलर और प्लांट प्रबंधन के लोगों से गहन पूछताछ कर रही है। बालाघाट के कई नामी और राजनीतिक रसूख वाले राइस मिलर के नाम भी सामने आए हैं। आशंका है कि 17 जिलों के 22 एथनाल प्लांटों को करीब 1100 करोड़ रुपये का चावल आवंटित किया गया है इसलिए हेराफेरी का दायरा बड़ा भी हो सकता है।

ऐसे होती है हेराफेरी: एथनाल उत्पादन के लिए मध्य प्रदेश सरकार ने एफसीआइ के गोदामों में रखे पुराने और खाने के लिए अनुपयोगी हो चुके चावल का इस्तेमाल करने की नीति बनाई है। वर्ष 2025 की इस नीति के अनुबंध के तहत बालाघाट के एफसीआइ गोदाम से चावल छिंदवाड़ा स्थित एथनाल प्लांट भेजा जाना था, लेकिन राइस मिलर और एथनाल प्लांट के सिंडिकेट ने इस चावल को राइस मिल में उतरवा लिया। बता दें, एथनाल प्लांट संचालक सरकार से 2320 रुपये प्रति क्विंटल की दर से कथित अनुपयोगी फोर्टिफाइड चावल प्राप्त करते हैं। हालांकि, इसके अनुपयोगी होने पर संदेह होता है। इस चावल से एथनाल बनाने के बजाय 2800 रुपये प्रति क्विंटल की दर से राइस मिलों को बेच देते हैं। इस हेरफेर में 480 रुपये प्रति क्विंटल की बचत राइस मिलर को हो जाती है। यही चावल वह नई पैकिंग में सरकार को बेच देते हैं। इसमें उनकी कस्टम मिलिंग यानी धान से चावल बनाने और उसे फोर्टिफाइड करने की लागत बच जाती है और इससे भी मुनाफा होता है।

अब तक चार लोग गिरफ्तार हो चुके हैं। राइस मिल संचालकों को नोटिस दिया गया है। अब तक 17 ट्रक जब्त किए गए हैं, इनकी चावल की हेराफेरी में संलिप्तता पाई गई है। जैसे-जैसे तथ्य सामने आएंगे, आगे विधिक कार्रवाई की जाएगी। **-आदित्य मिश्रा, एसपी, बालाघाट**

मथुरा की डिस्टलरी में भी चावल घोटाला, पकड़ी गई कालाबाजारी

मध्य प्रदेश में हुए घोटाले की तर्ज पर ही मथुरा के एलियांज डिस्टलरी में भी गरीबों के हक के राशन से मिलने वाले चावल का दुरुपयोग किया जा रहा था। एथनाल निर्माण के लिए सरकारों द्वारा डिस्टलरीज को 2370 रुपये प्रति क्विंटल (यानी प्रति किलोग्राम 23.70 रुपये) की रियायती दर पर चावल आवंटित किया जाता है। लेकिन डिस्टलरी प्रबंधन इस अनुदानित चावल को एथनाल बनाने के बजाय खुले बाजार में 30 से 32 रुपये प्रति किग्रा के ऊंचे दामों पर बेचा रहा था। 30 जून को दो ट्रकों में लदा 540 क्विंटल चावल पकड़े जाने के बाद रैकेट का भंडाफोड़ हुआ था। जांच में डिस्टलरी प्रबंधन से आबकारी विभाग की मिलीभगत भी सामने आई है। दो ट्रक पकड़े जाने के बाद दोनों ट्रकों के ड्राइवर अमरजीत और सुबोध कुमार से पूछताछ की तो सच सामने आया। बताया गया कि चावल से लदे दोनों ट्रक जींद भेजे जा रहे थे। टीम डिस्टलरी पहुंची और सीसीटीवी कैमरों की रिकार्डिंग देखी तो दोनों ट्रकों के निकाले जाने की पुष्टि हुई। डिस्टलरी के एमडी संजय सांगवान और दोनों चालकों पर केस दर्ज कराया गया।

साप्ताहिक राशिफल

रविवार, 12 जुलाई, 2026 से शनिवार 18 जुलाई, 2026 तक

पं. बी. बी. शास्त्री 'देवेश'

मेष (चू, चे, चो, ला, ली, लू, ले, लो, आ) कार्य शैली मे सुधार करें, सकारात्मक सोच से युक्त रहें, विदेश कार्य में प्रयास करें, सामाजिक रचनात्मक कार्य में यश, साधनों की पूर्ति, पारिवारिकजनों का सहयोग, शिक्षा में एकाग्रता, मित्रों से लाभ, प्रणय में सुख, धर्म में रुचि, आय में सुधार, शुभ अंक 4

वृष (इ, ऊ, ए, ओ, वा, वी, वू, वे, वो) लक्ष्य प्राप्ति में प्रयास, अर्थसाधन में सुधार, धन के आवागमन में सावधानी, पारिवारिक कार्य में प्रयास, भूमि, भवन में साजसज्जा का योग, अध्ययन में रुचि, चयन में सफलता, वाद विवाद से बचें, संयम रखें, अधिकारी से सहयोग, स्थान पद परिवर्तन योग, आय में सुधर, शुभ अंक 5

मिथुन (का, की, कू, घ, ङ, छ, के, को, हा) कार्य में सलाह से कार्य करें, अर्थसाधन में प्रयास, आत्मविश्वास की वृद्धि, महिला से सहयोग, समस्या का समाधान, आभूषण वस्त्र साजसज्जा योग, सन्तान से सहयोग, रक्त विकार, वायु विका योग, दाम्पत्य में सुख, राज्यपक्ष से सहयोग, व्यय अधिक, शुभ अंक 6

कर्क (ही, हू, हे, हो, डा, डी, डू, डे, डो) प्रतिस्पर्धा से चिन्ता, विचारों की अधिकता, अर्थसाधन का प्रयास, नकारात्मक कार्य करने वालों से सावधान, निजी संबंधों में सुधार, भवन साजसज्जा का योग, शिक्षा में रुचि, नेत्र, त्वचा विकार योग, प्रणय में सुख, भ्रमण, मनोरंजन योग, व्यय अधिक, शुभ अंक 7

सिंह (मा, मी, मू, मे, मो, टा, टी, टू, टे) परिस्थिति के अनुरुप कार्य करें, साझेदारी में सावधानी, धनागम में प्रयास करें, चिन्ता का समाधान, विदेश कार्य में देरी, शिक्षा में एकाग्रता, चयन में देरी, वायु विकार, रक्त विकार योग, जीवनसाथी का मिलन, अनुबन्ध की प्राप्ति, अधिकारी से सहयोग, व्यय अधिक, शुभ अंक 8

कन्या (टो, पा, पी, पू, ष, ण, ठ, पे, पो) प्रतिस्पर्धा से चिन्ता, कार्य क्षेत्र में सहयोग से सफलता, पूंजी निवेश में सावधानी, विदेश कार्य में अवरोध, निजी मतभेद, मानसिक चिन्ता, वाहन साजसज्जा योग, शिक्षा में रुचि, शत्रुपक्ष प्रभावी, प्रणय में सुख, धर्म में रुचि, अधिकारी से सहयोग, व्यय अधिक, शुभ अंक 8

तुला (रा, री, रू, रे, रो, ता, ती, तू, ते) जीवन में शांति एवं प्रसन्नता, व्यापारिक क्षेत्र में विस्तार, धन के आवगमन में सावधानी, स्व :सम्पत्ति की वृद्धि, भूमि, भवन कार्य में देरी, अध्ययन में अवरोध, चयन में सफलता, मित्रों से सहयोग, दाम्पत्य में सुख, यात्रा में सावधानी, आय में सुधार, शुभ अंक 1

वृश्चिक (तो, ना, नी, नू, ने, नो, या, यी, यू) निर्णय सलाह से करें, लक्ष्य के प्रति सजगता, धनागम में प्रयास, निजी मतभेद समाप्त होंगे, नई युक्ति एवं अनुभव का समावेश करें, शिक्षा में रुचि, चयन में देरी, शत्रुपक्ष प्रभावी, दाम्पत्य में सुख, राज्यपक्ष से अवरोध, स्थान पद परिवर्तन योग, व्यय अधिक, शुभ अंक 2

धनु (ये, यो, भा, भी, भू, धा, फा, ढा, भे) अर्थसाधन में तत्परता, कार्य क्षेत्र में सफलता, अर्थसाधन में प्रगति, समाज में यश, स्व :सम्पत्ति की वृद्धि, परिजनों का सहयोग, संतान से अनबन, चयन में सफलता, जीवनसाथी का मिलन, स्वास्थ्य के प्रति सजगता, वाहन में सावधानी, व्यय अधिक, शुभ अंक 4

मकर (भो, जा, ज, खी, खू, खे, खो, गा, गी) धनागम में सफलता, साझेदारी में सावधानी, नकारात्मक विचारों से बचें, दिनचर्या व्यस्ततम, पूंजी निवेश में सावधानी, माता-पिता का ध्यान रखें, संबंधों में सुधार, सन्तान से अनबन, मित्रों से लाभ, चयन में सफलता, दाम्पत्य में अनबन, स्थान पद परिवर्तन योग, आय में सुधार, शुभ अंक 5

कुम्भ (गू, गे, गो, सा, सी, सू, से, सा, दा) अर्थ साधन में प्रयास, कार्य क्षेत्र में सफलता, अतिविश्वास और कल्पना से बचें, सामाजिक कार्य में यश, साधनों की पूर्ति, सन्तान से सहयोग, मित्रों से सहयोग, त्वचा विकार, रक्त विकार प्रभावी, वाद में विजय, दाम्पत्य में सुख, अधिकारी से सहयोग, आय में सुधार, शुभ अंक 6

मीन (दी, दू, थ, झ, दे, दो, चा, ची) प्रतिस्पर्धा से चिन्ता, धनागम में सफलता, धन के आवागमन में सावधानी, अनुभव एवं युक्ति से कार्य करें, विदेश कार्य में देरी, साधनों की पूर्ति, अध्ययन में रुचि, शत्रुपक्ष परास्त, दाम्पत्य में सुख, राजनैतिक अपयश, अधिकारी से सहयोग, शुभ अंक 7

सविस्तर

ईपीएफ ३.०: कर्मचाऱ्याच्या भविष्याबाबत प्रश्नचिन्हच?

कर्मचाऱ्यांना निवृत्तीनंतर आर्थिक सुरक्षा मिळावी, यासाठी कर्मचारी भविष्यनिर्वाह निधीमध्ये कर्मचारी आणि कंपनी दोघेही नियमित योगदान देत. ते बदलून करण्यात आलेली नवी रचना अर्थात 'ईपीएफ ३.०' कोणाच्या फायद्यासाठी आहे हे उघड आहे.

सचिन रोहेकर

राज्य आणि केंद्र सरकारचे कर्मचारी वगळता, देशातील आठ कोटी पगारदारांच्या सेवानिवृत्तीनंतरच्या जीवनाचा एकमेव विश्वासू आधार म्हणजे कर्मचारी भविष्यनिर्वाह निधी (ईपीएफ) आहे. निवृत्तीनंतर आर्थिक सुरक्षा मिळावी, यासाठी संपूर्ण सेवाकाळात कर्मचारी आणि कंपनी दोघेही यामध्ये नियमित योगदान देतात. मात्र, ईपीएफची ही मूळ रचनाच बदलणारा एक मोठा निर्णय घेण्यात आला आहे. 'ईपीएफ योजना, २०२६' ची अधिकृत अधिसूचना २९ जून २०२६ रोजी प्रसिद्ध झाली असून, तिने ७४ वर्षांपूर्वीच्या 'ईपीएफ योजना, १९५२'ची जागा घेतली आहे. १ जुलै २०२६ पासून लागू झालेल्या या नव्या व्यवस्थेला सरकारी भाषेत 'ईपीएफ ३.०' अशी मोठी 'सुधारणा' म्हटले जात असले, तरी फारसा गाजावाजा न करता ती चूपचाप लागू करण्यात आली आहे. देशातील साधारण ४० कोटी जनतेच्या (आठ कोटी सदस्य आणि त्यांचे कुटुंबीय) आर्थिक नियोजनावर थेट परिणाम करणारा हा बदल नेमका काय आहे, हे समजून घेणे गरजेचे आहे.

दरमहा फक्त १,८०० रुपयेच पीएफ जमा होणार?

नव्या नियमांनुसार, ज्या कर्मचाऱ्यांचे मासिक मूळ वेतन (बेसिक डीए) १५ हजार रुपयांपेक्षा जास्त आहे, त्यांचे ईपीएफमधील योगदान आता ऐच्छिक करण्यात आले आहे. म्हणजेच, १५ हजार रुपयांच्या १२ टक्के या प्रमाणात निघणारे १,८०० रुपये योगदानच आता बंधनकारक राहील. त्यापुढील रकमेवर पीएफ कपातीची सक्ती नसेल. विशेष म्हणजे हा ऐच्छिक पर्याय कर्मचारी आणि मालक दोघांनाही उपलब्ध करून देण्यात आला आहे. जुन्या 'ईपीएफ योजना १९५२' अंतर्गत, नोकरीत रुजू होताना मूळ वेतन १५ हजार रुपयांपर्यंत असल्यास योजनेत सामील होणे बंधनकारक होते. पण एकदा या योजनेत सहभागी झाल्यावर, कंपनी कर्मचाऱ्याच्या प्रत्यक्ष मूळ वेतनावर (मग ते १५ हजार रुपयांपेक्षा कितीही जास्त असले तरी) १२ टक्के दराने पीएफ कापत असे. आता नव्या नियमामुळे, १,८०० रुपयांपेक्षा अधिक योगदान करायचे की नाही, याचा निर्णय कर्मचारी आणि कंपनी यांच्या मर्जी तसेच परस्परसंमतीवर अवलंबून राहील. याचा तात्कालिक परिणाम म्हणून कर्मचाऱ्यांच्या पगारातून होणारी पीएफ कपात १,८०० रुपयांवर मर्यादित राहील. (याची अंमलबजावणी प्रत्यक्षात कंपनी स्तरावर वेगवेगळी असेल!) पीएफ कपात मर्यादित राहिल्याने, कर्मचाऱ्यांच्या हाती येणारा महिन्याकाठीचा पगार वाढलेला दिसेल. मात्र कंपनीचे योगदानही कमी होणार असल्याने मालकांची दरमहा मोठी बचत होईल.

१५ हजार रुपयांच्या मर्यादेचा इतिहास आणि कारणे

कर्मचारी भविष्यनिर्वाह निधीसाठी कायद्याने ठरवून दिलेली 'वैधानिक वेतन मर्यादा' सध्या १५ हजार रुपये आहे. याचा कायदेशीर अर्थ, ज्या कर्मचाऱ्यांचे महागाई भत्त्यासह मूळ वेतन (बेसिक डीए) १५ हजार रुपये किंवा त्यापेक्षा कमी आहे, त्यांना ईपीएफ योजनेचा भाग होणे बंधनकारक आहे. तथापि किमान वेतनाची वाढलेली पातळी गाठण्यासाठी १ सप्टेंबर २०१४ रोजी ही मर्यादा ६,५०० रुपयांवरून थेट १५ हजार रुपये करण्यात आली होती. मात्र, गेल्या १२ वर्षांत महागाई वाढूनही या मर्यादेत कोणताही बदल न होता, ती १५ हजार रुपयांवर स्थिर राहिली. कामगार मंत्रालय आणि ईपीएफओ विश्वस्त मंडळाने ही मर्यादा २१ हजार रुपये (ईएसआयसी अर्थात 'एसिक'च्या धर्तीवर) करण्याचा प्रस्ताव अनेकदा मांडला; परंतु अर्थ मंत्रालयाच्या मंजुरीअभावी तो प्रलंबित राहिला आणि आता प्रत्यक्षात उलट्या दिशेने प्रवास सुरू झाला आहे.

ही मर्यादा न वाढवण्यामागे मुख्य कारण उद्योगांचा विरोध आणि सरकारवरील आर्थिक बोजा हेच आहे. कंपनीच्या १२ टक्के योगदानापैकी ८.३३ टक्के हिस्सा कर्मचारी पेन्शन योजनेत (ईपीएस-९५) जातो. पगार ५० हजार असला तरी पेन्शन फंडात कमाल १५ हजार रुपयांच्या हिशोबाने दरमहा फक्त १,२५० रुपये जमा होतात. ही मर्यादा २१ हजार रुपये झाली असती, तर कंपनीचे पेन्शन योगदान १,७५० रुपये झाले असते. यातून कंपन्यांवर दरमहा सुमारे चार हजार कोटी रुपयांचा अतिरिक्त बोजा पडला असता. तसेच केंद्र सरकार स्वतः पेन्शन योजनेत १.१६ टक्के हिस्सा देते. म्हणजेच प्रति कर्मचारी दरमहा फक्त १७४ रुपये देते. वैधानिक वेतन मर्यादा वेतन १५ हजार वरून २१ हजार (किंवा अधिक) वाढल्यास सरकारी तिजोरीतून दरमहा १४०० कोटी रुपये अतिरिक्त द्यावे लागले असते. अर्थात कंपन्यांच्या तुलनेत ही वाढ कमीच असती. त्यामुळे कंपन्यांच्या आर्थिक भल्यासाठीच हा निर्णय घेतला गेला का, असा प्रश्न उपस्थित होतो.

कंपन्यांना फायदा कसा?

पीएफसाठी योगदानाची सक्ती संपणे हा कंपन्यांसाठी मोठा दिलासा आहे. उच्च वेतन श्रेणीतील एखादा कर्मचारी त्याच्या पीएफ खात्यात स्वतःहून जास्त योगदान ('व्हीपीएफ'द्वारे) चालू ठेवू इच्छित असला, तरी कंपनीवर तितकेच समतुल्य योगदान देण्याचे कायदेशीर बंधन नसेल. कंपन्या आपले योगदान प्रति कर्मचारी दरमहा कमाल १,८०० रुपयांवर मर्यादित ठेवू शकतील.

रिलायन्स इंडस्ट्रीज, अदानी एंटरप्रायझेस, टीसीएस, इन्फोसिस, एल अँड टी, हिंदुस्तान युनिलिव्हर किंवा सरकारी क्षेत्रातील कोल इंडिया, इंडियन ऑइल यांसारख्या बड्या कंपन्यांमध्ये उच्च वेतन घेणाऱ्या कर्मचाऱ्यांची संख्या खूप मोठी आहे. पूर्वी कर्मचाऱ्याच्या मोठ्या पगारावर कंपन्यांनाही मोठी रक्कम अनिवार्यपणे द्यावी लागायची. आता या कंपन्यांना प्रति कर्मचारी दरमहा कमाल १,८०० रुपयांचीच मर्यादा असल्याने, कॉर्पोरेट पातळीवर कंपन्यांची कोट्यवधी रुपयांची थेट रोख बचत होणार आहे. विद्यमान कर्मचाऱ्यांबाबत हा बदल ताबडतोब या महिन्यापासून लागू होईल, अशी शक्यता कमी असली तरी नव्याने दाखल कर्मचाऱ्यांवर मात्र तो लगेचच अमलात नक्कीच येईल.

कर्मचारी काय कमावणार आणि काय गमावणार?

वरवर पाहता कर्मचाऱ्यांचा पगार वाढणार असला, तरी दीर्घकालीन आर्थिक सुरक्षेच्या दृष्टीने हा बदल सामाजिक सुरक्षा कवचाला छेद देणारा आहे. ईपीएफ हे सक्तीच्या बचतीचे आणि निवृत्तीनंतरचा कोश उभारणारे सर्वात मोठे साधन आहे. आजच्या घडीला तर ईपीएफ हीच सर्वाधिक आणि खात्रीशीर व्याज देणारी योजना आहे. दीर्घकाळात चक्रवाढ व्याजासह एक मोठी रक्कम कर्मचारी निवृत्तीसमयी यातून मिळवत आला आहे. आता मात्र निवृत्तीसाठीचा हा निधी कमालीचा घटेल.

यात भर म्हणून, नव्या 'ईपीएफ ३.०' नियमांमध्ये आजारपण, शिक्षण किंवा लग्नासाठी जमा रकमेच्या तब्बल ७५ टक्क्यांपर्यंतचा भाग थेट काढण्याची मुभा आहे. जुन्या नियमात संपूर्ण सेवाकाळात लग्न किंवा शिक्षणासाठी केवळ तीनदाच पैसे काढता येत होते, ती मर्यादा आता शिक्षणासाठी १० वेळा आणि लग्नासाठी पाच वेळा करण्यात आली आहे. शिवाय, हे पैसे काढणे अधिक सुलभ करण्यासाठी थेट एटीएम कार्ड आणि यूपीआयची सोय केली जाणार आहे.

ईपीएफचा मुख्य उद्देश 'भविष्य निर्वाह' हा आहे. पैसे काढणे बँकेइतकेच सोपे आणि झटपट होईल, तेव्हा कामगार दैनंदिन गरजा किंवा चैनीसाठीही पीएफचा निधी खर्च करून टाकतील. परिणामी, निवृत्तीच्या वेळी हाताशी अत्यंत तुटपुंजी रक्कम शिल्लक राहील. सामाजिक सुरक्षेची इतर साधने उपलब्ध नसताना, निवृत्ती निधीचा असा संकोच होणे म्हणजे कामगारांचे वार्धक्य अंधारात ढकलण्यासारखेच आहे.

sachin. rohekar@expressindia.com

महाराष्ट्राचे 'बिमारू'करण?

एकेकाळी 'बिमारू' म्हणून हिणवल्या जाणाऱ्या राज्यांपासून मुंबईसारखी देशाची आर्थिक राजधानी, पुण्यासारखे विद्येचे माहेरघर, नागपूर यासारखी शहरे सामावून घेणारा महाराष्ट्र खूप दूर होता. पण आज महाराष्ट्र आणि या 'बिमारू' राज्यांमधील अंतर झपाट्याने कमी होत आहे. असे का झाले?

वैभव केशव

महाराष्ट्र म्हणजे पुरोगामी/सुधारलेलं राज्य असं आपण सतत ऐकत आलेलो असतो. महाराष्ट्र सुधारणांचा पाईक. समाजसुधारकांची भूमी. शाळेतील पाठ्यपुस्तकांपासून ते राजकारण्यांच्या भाषणांपर्यंत हे वाक्य एखाद्या मंत्रासारखे घोकले जाते. सगळे एकमुखाने सांगतात: महाराष्ट्र पुढे आहे, महाराष्ट्र आदर्श आहे, महाराष्ट्र देशाला दिशा दाखवतो. पण हा दावा खरा आहे का? देशातील सर्वात मोठी अर्थव्यवस्था असलेल्या या राज्याची शालेय शिक्षणाची परिस्थिती नक्की कशी आहे? आकडेवारीने या प्रश्नाचे उत्तर दिले आहे आणि ते उत्तर आपल्या अभिमानाला हादरा देणारे आहे.

■ लहान मुले शाळेबाहेरच-

तीन ते आठ वर्षे वयोगटातील म्हणजे पूर्व-प्राथमिक ते दुसरी या मुलांच्या नोंदणीत महाराष्ट्र आहे ४०.८ टक्क्यांवर. राष्ट्रीय सरासरी ४१.४ टक्के आहे. म्हणजे 'पुरोगामी' महाराष्ट्र या वयोगटात देशाच्या सरासरीपेक्षाही मागे आहे. या वयातील निम्म्याहून अधिक मुले औपचारिक शिक्षणाच्या कक्षेबाहेरच राहतात. या वयात शिक्षणाचा पाया न रचला गेल्यास पुढील सर्व टप्पे कमकुवत होतात हे शिक्षणशास्त्र सांगते. पण धोरणकर्त्यांना ते ऐकायचे नाही असे दिसते.

■ माध्यमिक शिक्षण 'बरे' म्हणजे पुरेसे नाही-

माध्यमिक स्तरावर इयत्ता नववी ते १२ वी महाराष्ट्राचे नोंदणी प्रमाण ८२.१ टक्के आहे. राष्ट्रीय सरासरीपेक्षा हे जास्त आहे, हे खरे. पण हिमाचल प्रदेश एक छोटे, डोंगराळ राज्य ८३.६ टक्क्यांवर आहे. केरळ ९४.१ टक्क्यांवर. म्हणजे प्रत्येक पाच मुलांपैकी एक मूल महाराष्ट्रात माध्यमिक शाळेबाहेर आहे. हे आपले 'पुरोगामित्व' आहे का? हिमाचल प्रदेश, पंजाब, केरळ या राज्यांचे उत्पन्न महाराष्ट्रापेक्षा कमी आहे. पण शिक्षणाचे आकडे महाराष्ट्रापेक्षा खूप चांगले आहेत. पैसा नाही, ही सबब आता चालणार नाही.

■ गळती राष्ट्रीय सरासरीएवढीच, हे 'यश' नाही-

माध्यमिक स्तरावर महाराष्ट्राचा गळती दर आहे ८.३ टक्के. राष्ट्रीय सरासरी ८.२ टक्के. हा फरक नगण्य आहे, पण 'राष्ट्रीय सरासरी'एवढे असणे हे श्रीमंत राज्यासाठी यश नाही, ती लाज आहे. केरळमध्ये हाच दर ३.५ टक्के आहे, हिमाचलमध्ये ४.६ टक्के. गळतीची कारणे वेगवेगळी असतात. दारिद्र्य, स्थलांतर, बालविवाह, शिक्षकांची अनुपस्थिती. पण कारणे माहीत असतानाही उपाय का होत नाहीत? हा प्रश्न राजकीय इच्छाशक्तीचा आहे.

■ इयत्ता पहिलीत आलेल्यांपैकी बारावीपर्यंत पोहोचतात किती? हा आकडा सर्वात जास्त बोलतो. महाराष्ट्रात इयत्ता पहिलीत प्रवेश घेणाऱ्या प्रत्येक १०० मुलांपैकी फक्त ६७ मुले बारावीपर्यंत पोहोचतात. ३३ मुले वाटेत गळतात. केरळमध्ये हे प्रमाण ९० आहे, हिमाचलमध्ये ८३. या ३३ मुलांचे काय होते? त्यांची स्वप्ने, त्यांच्या कुटुंबाच्या आशा... सगळे कुठे जातात? शाळेची इमारत उभी आहे, पटशाळेत नाव आहे, पण मूल नाही. हे आपण 'पुरोगामी' म्हणवतो त्या राज्याचे चित्र आहे.

■ शिक्षक नाही, तर शिक्षण कुठून?

माध्यमिक स्तरावर एका शिक्षकामागे २६ विद्यार्थी. हे महाराष्ट्राचे विद्यार्थी-शिक्षक प्रमाण आहे. हिमाचल प्रदेशात हेच प्रमाण आठ आहे, केरळात १६, पंजाबात १३. म्हणजे हिमाचलमधील एका शिक्षकाच्या वर्गात जेवढी मुले असतात, त्याच्या तिप्पट मुले महाराष्ट्रात एका शिक्षकावर असतात. शिक्षकांच्या जागा वर्षानुवर्षे रिक्त ठेवणे, भरती प्रक्रिया न्यायालयात अडकवणे, कंत्राटी शिक्षकांवर अवलंबून राहणे हे धोरण आहे की हलगर्जीपणा? दोन्ही असतील, तर याला जबाबदार कोण?

एक शिक्षक, २६ मुले यात शिक्षण होईल असे म्हणणे म्हणजे एका डॉक्टरकडे ३० रुग्ण पाठवून 'उत्तम आरोग्यसेवा' असल्याचा दावा करण्यासारखे आहे.

महाराष्ट्राला खूप काम बाकी आहे

नव्वदच्या दशकात काही अर्थतज्ज्ञ बिहार, मध्य प्रदेश, राजस्थान आणि उत्तर प्रदेश या गोपट्ट्यातील चार राज्यांसाठी एक शब्द वापरत : BIMARU (बिमारू) म्हणजे आजारी, बीमार. कारण या राज्यांमध्ये शिक्षण, आरोग्य, रोजगार सगळ्याच निकषांवर भयंकर मागासलेपण होते. देशाची प्रगती या राज्यांमुळे रखडते, असे त्यावेळी म्हटले जात असे.

आणि महाराष्ट्र? महाराष्ट्र या सगळ्यापासून खूप दूर उभा होता. मुंबई, पुणे, नागपूर देशाची आर्थिक राजधानी. शिक्षणाचे माहेरघर. पुरोगामी राज्य. पण आज महाराष्ट्र आणि या 'बिमारू' राज्यांमधील अंतर झपाट्याने कमी होत आहे. काही निकषांवर तर महाराष्ट्र त्या राज्यांच्या जवळ जाऊन उभा आहे.

सोबतच्या दोन आलेखांमधून एक गोष्ट स्पष्टपणे दिसते. महाराष्ट्र राष्ट्रीय सरासरीपेक्षा थोडा बरा आहे, पण खऱ्या अर्थाने 'पुरोगामी' म्हणण्यालायक अजिबात नाही. जे राज्य स्वतःला सुधारणांचे माहेरघर म्हणवते, ते शालेय शिक्षणाच्या मूलभूत निकषांवर हिमाचल प्रदेश, केरळ आणि पंजाबपेक्षा मागे आहे.

हे संकट कुणा एका सरकारने निर्माण केले नाही. दशकानुदशके झालेल्या धोरणात्मक उदासीनतेचा हा परिणाम आहे. बजेट आहे, पण खर्च योग्य ठिकाणी होत नाही. शाळा आहेत, पण शिक्षक नाहीत. मुले नोंदणी होतात, पण शिकत नाहीत.

आणि तरीही दर निवडणुकीत 'पुरोगामी महाराष्ट्र' हे घोषवाक्य नव्याने पेरले जाते. कुणी विचारत नाही, कुणाला उत्तर द्यायचे नाही.

'बिमारू' हा शब्द केवळ त्या चार राज्यांच्या नावांवरून आला नव्हता. तो एका विचारसरणीचे प्रतीक होता. शिक्षणावर खर्च करणे म्हणजे पैसा वाया घालवणे, शिक्षकांच्या जागा रिक्त ठेवणे म्हणजे बचत करणे, गळती हा 'नैसर्गिक' प्रक्रियेचा भाग आहे, ही ती विचारसरणी. महाराष्ट्रात आज हीच विचारसरणी वेगळ्या भाषेत, वेगळ्या वेषात रुजत आहे.

जी राज्ये एकेकाळी 'बिमारू' होती ती आज सुधारत आहेत. आणि महाराष्ट्र जो कधी पुढे होता, त्याचे पाय जागीच रोवले आहेत. गोपट्टीकरण म्हणजे रातोरात मागे जाणे नाही. ते हळूहळू होते. एक रिक्त जागा, एक बंद शाळा, एक गळालेला विद्यार्थी एका वेळी एक.

दहा वर्षांनी मागे वळून पाहिले की लक्षात येते, कुठे चुकले ते. महाराष्ट्राला ती चूक आत्ता ओळखता आली आणि दुरुस्त करता आली तर ठीक. अन्यथा 'पुरोगामी/सुधारलेला महाराष्ट्र' हे शब्द फक्त इतिहासाच्या पानांमध्येच उरतील.

लेखक एमआयटी (मॅसाच्युसेट्स इन्स्टिट्यूट ऑफ टेक्नॉलॉजी) मध्ये पोस्टडॉक्टरल फेलो आहेत.
vaibhavkeshav2024@gmail.com

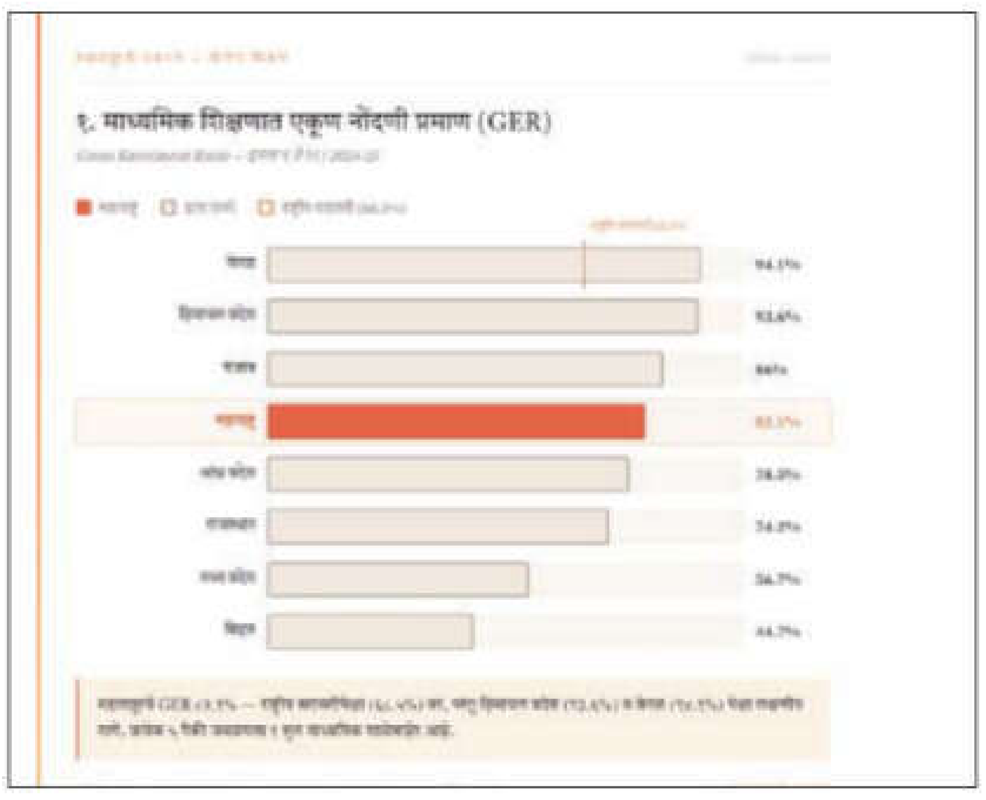

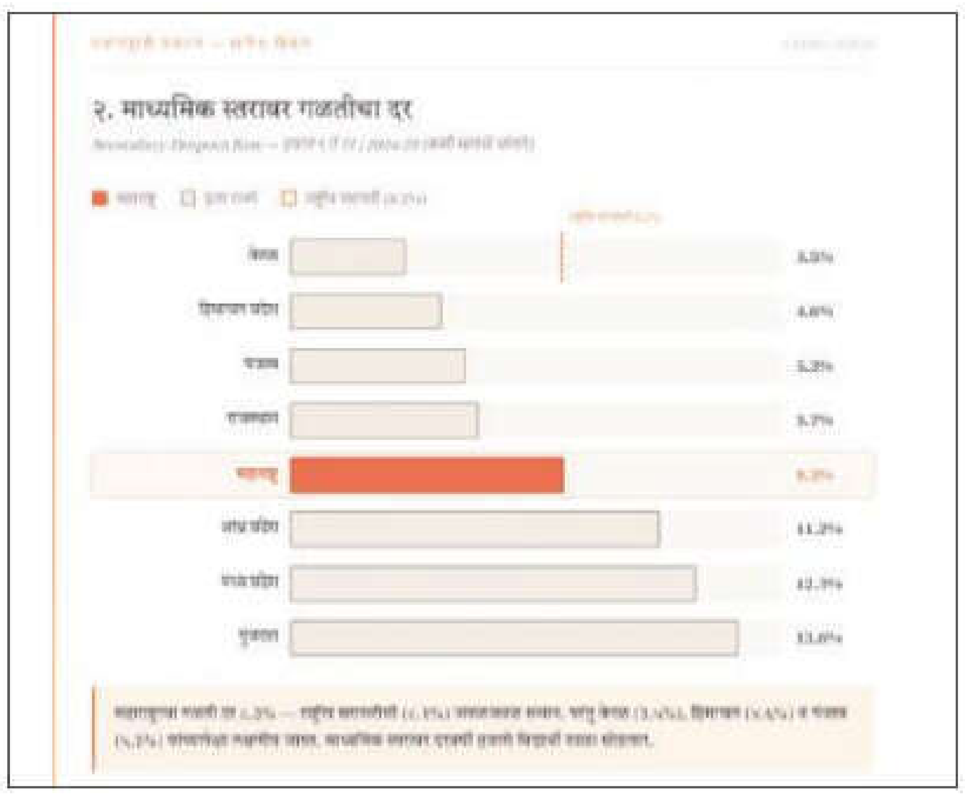

चांदनी चौकातून
दिल्लीवाला

चर्चेतील पंजाब

पंजाबमध्ये पुढच्या सहा महिन्यांमध्ये विधानसभेची निवडणूक होणार आहे. त्यामुळं काँग्रेस आणि भाजप या दोन्ही पक्षांची नजर पंजाबवर खिळलेली आहे. पश्चिम बंगालप्रमाणं पंजाबची मोहीमही फत्ते करण्याचा अमित शहांनी विडा उचलला आहे असं म्हणतात. आधी पंजाब मग उत्तर प्रदेश अशा दोन राज्यांमध्ये शहा ठाण मांडून बसतील असं दिसतंय.

पण, हा पुढचा भाग. आत्ता पंजाबच्या निमित्ताने दोन घमासान सुरू आहेत. 'सतलज' सिनेमावर बंदी घातली नसती तर बरं झालं असतं असं म्हणायची वेळ सरकारवर येऊन ठेपली आहे. हा सिनेमा पंजाबभर दाखवला जात असल्यानं या सिनेमाचं प्रदर्शन रोखायचं कसं हा प्रश्न पडलाय. पंजाबमधील दहशतवाद मोडून काढण्यासाठी झालेला हिंसाचार वगैरे हा सर्व काँग्रेस सरकारच्या काळातील इतिहास आहे. पण, निवडणुकीच्या काळात पुन्हा संवेदनशील विषय उकरून काढला गेला आणि त्याचे तीव्र पडसाद उमटले तर बदनामी मोदी सरकारला झेलावी लागेल, ही सर्वात मोठी चिंता सरकारसमोर आहे. शिवाय, सिनेमामध्ये पंजाब पोलिसांवर थेट आरोप झाल्यामुळं शासन आणि प्रशासन दोन्हीच्या विश्वासार्हतेचा मुद्दाही तीव्र होतो. त्यामुळं सरकारसाठी 'सतलज' सिनेमा अवघड जागेचं दुखण झालेलं आहे. काहीही असो, या सिनेमाने अपेक्षित परिणाम घडवून आणलेला आहे. सरकार या सिनेमापुढं हतबल झालेलं आहे. आता काहीही करता येण्याजोगं नाही! दुसरी घडामोड म्हणजे काँग्रेसमधील मारामारी. गेल्या निवडणुकीच्यावेळी देखील मारामारी झालेली होती. कॅप्टन अमरिंदर सिंग यांना मुख्यमंत्रीपदावरून बाजूला केलं गेलं. नवज्योतसिंग सिद्धू यांना प्रदेशाध्यक्ष केलं गेलं. दोघांच्या लढाईत काँग्रेसनं पंजाब गमावलं. यावेळीही माजी मुख्यमंत्री चरणजीतसिंग चन्नी आणि प्रदेशाध्यक्ष अमरिंदरसिंग राजा वारिंग यांच्यामध्ये नेतृत्वावरून मतभेद टोकाला गेलेले आहेत. प्रभारी भूपेश बघेल यांनी बैठक बोलवली तर चन्नी दिल्लीत येऊन बसले. हायकमांड वारिंग यांना हटवायला तयार नाही, चन्नी मागे हटायला तयार नाहीत. हायकमांडच्या आदेशामुळं बघेल यांनी नेतृत्व बदल होणार नाही असं सांगितलं. त्यातून प्रकरण आणखी चिघळलं. पंजाबमध्ये घमासान सुरू असताना राहुल गांधी परदेश दौऱ्यावर गेले आहेत. ते आल्याशिवाय मध्यस्थी होऊ शकत नाही. काँग्रेसमध्ये गेल्या वेळची पुनरावृत्ती होते की काय हा प्रश्न विचारला जाऊ लागला आहे.

ना इकडे ना तिकडे

बऱ्याच दिवसांनी अशोक गेहलोत अकबर रोडवरील 'एआयसीसी'च्या कार्यालयात आलेले होते. विषय राम मंदिराचा होता. काँग्रेसच्या एकाही ज्येष्ठ नेत्याने या विषयावर भाष्य केलेलं नव्हतं. कधी नव्हे ते अशोक गेहलोत काँग्रेसच्या मुख्यालयात पत्रकार परिषद घेण्यासाठी आलेले होते. ते आले ते एकटेच. त्यांच्याबरोबर काँग्रेसचा एकही नेता किंवा प्रवक्ता नव्हता हे विशेष. राजस्थानचे मुख्यमंत्री होण्याआधी काँग्रेसचे संघटना महासचिव अशोक गेहलोतच होते. त्यांची जागा नंतर के. सी. वेणुगोपाल यांनी घेतली. त्यांनाही केरळचे वेध लागले होते, राज्यात मुख्यमंत्री म्हणून परत जाण्यासाठी वेणुगोपाल यांनी जोरदार तयारी केली होती पण, शेवटच्या क्षणी त्यांच्या हातून मुख्यमंत्रीपद निसटलं. वेणुगोपाल यांचे आत्ताचे बॉस मल्लिकार्जुन खरगे यांना तर मुख्यमंत्रीपदाने तीन वेळा चकवा दिला. पक्षाध्यक्ष झाल्यावर देखील कर्नाटकच्या मुख्यमंत्रीपदी त्यांच्या नावाची चर्चा सुरू होती. पण, खरगे दिल्लीतच राहिले आणि वेणुगोपालही. अशोक गेहलोत यांना मात्र मुख्यमंत्री होता आलं आणि त्यांना ते पद सोडायचं नव्हतं. त्यांच्यासाठी मुख्यमंत्रीपद इतकं महत्त्वाचं ठरलं की, त्यापायी त्यांनी हायकमांडशी संबंध बिघडवले. राजस्थानात काँग्रेसचा पराभव झाल्यामुळं अशोक गेहलोत याचं मुख्यमंत्रीपद गेलं. आता ते ना दिल्लीत आहेत ना राजस्थानात. ते स्वतःच सांगतात, मी दोन्हीकडच्या राजकारणापासून दूर आहे... मध्यंतरी काँग्रेस हायकमांड सोनिया गांधींशी त्यांची भेट झाली होती. त्यामुळं ते पुन्हा 'निष्ठावान' झाले की काय असं विचारलं जाऊ लागलं होतं. पण, तसं अजून झालेलं दिसत नाही. काँग्रेसच्या पक्षाध्यक्षपदी अशोक गेहलोत यांच्या नावाला तेव्हा सोनिया गांधींनी हिरवा कंदील दिला होता. त्यामुळं गेहलोत यांच्याकडून हायकमांडची ऑफर स्वीकारली जाणारच याची खात्री काँग्रेस नेत्यांना होती. पण, राजस्थान सचिन पायलट यांच्याकडं सोपवायला गेहलोत तयार नव्हते. दोघांतील वाद इतका

टोकाला गेला की, पायलट भाजपच्या वाटेवर होते असं म्हणतात. त्यांना पुरेसे आमदार जमवता आले नाहीत म्हणून ही बंडखोरी बारगळली. राजस्थानात 'ऑपरेशन टायगर' राहून गेलं. पण, अशोक गेहलोत यांनी पक्षाध्यक्षपद अव्हेरून सोनिया गांधींचा विश्वास गमावला. राजस्थानात गमावलेला हा 'विश्वास' गेहलोतांना अजूनही परत मिळवता आलेला नाही. त्यामुळं गेहलोत काँग्रेसच्या मुख्यालयात आले तेव्हा सगळ्यांना थोडं आश्चर्यही वाटलं. राम मंदिरातील देणगीच्या अपहाराबद्दल काँग्रेसच्या ज्येष्ठ नेत्याने बोलणं अपेक्षित होतं. मग, त्यासाठी गेहलोतांशिवाय दुसरा कोण असू शकतो? गेहलोतांनी राजस्थानातील अवैध खाणकामाचाही उल्लेख केला. त्यावर त्यांनी खोलात जाऊन भाष्य केलं नाही. ते एवढंच म्हणाले की, अवैध खाणकामातील दगड राम मंदिरासाठी वापरू नका असं मी चंपत राय यांना सांगितलं होतं... राम मंदिराच्या बांधकामामध्ये राजस्थानातील दगड वापरलेले आहेत. त्यासंदर्भात गेहलोत अधिक बोलले नाहीत पण, अवैध खाणकामातून हे दगड घेतले जात होते का, त्यात काही आर्थिक गैरव्यवहार होता का वगैरे मुद्देही उपस्थित होऊ शकतात. गेहलोतांनी एक खडा मारून बघितला. पण त्याची चर्चा फार झाली नाही कारण राम मंदिरातील घोटाळ्यातून आधीच बरेच 'दगड' बाहेर आले आहेत.

भूपेंद्र यादवांच्या नाकाखाली?

केंद्रीय पर्यावरणमंत्री भूपेंद्र यादव यांच्या चारही साहाय्यकांची हकालपट्टी धक्कादायक होती. दोन अधिकाऱ्यांना त्यांच्या मूळ प्रशासकीय सेवेत पाठवण्यात आलेलं आहे, दोघांना गाशा गुंडाळून जायला सांगितलं गेलं. मोदी सरकारच्या प्रशासनातील चार नोकरशहांना एकाच वेळी हाकलून देण्याची ही पहिलीच वेळ आहे. हे प्रकरण नेमकं काय आहे, ते अजून स्पष्ट झालेलं नाही. त्याबाबत बऱ्याच चर्चा आहेत पण, त्यातील काय खरं हे कोणीच सांगू शकत नाही. काहींचं म्हणणं आहे की राजस्थानमधील अवैध प्रकरणांमध्ये या अधिकाऱ्यांचा सहभाग होता. काहींचं म्हणणं की, पर्यावरण मंत्रालयाशी निगडित मंजुऱ्यांमध्ये नेहमीच घोटाळे होतात, त्यातून भ्रष्टाचार उघड झाला असावा वगैरे. मोदी सरकारमध्ये

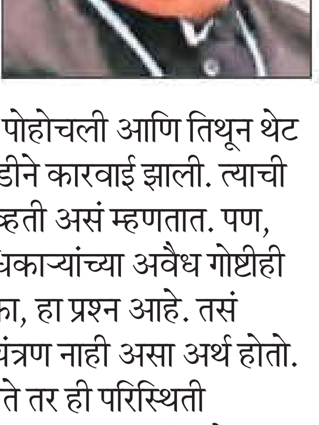

निर्णय घेतले जातात पण, त्याची वाच्यता केली जात नाही. स्पष्टीकरण देण्याची, माहिती देण्याची तर पद्धतच नाही. त्यामुळं खरं कारण पुढं कधी तरी समजलं तर समजेल. अधिकाऱ्यांच्या कथित बेकायदा कारभाराची माहिती पंतप्रधान कार्यालयापर्यंत पोहोचली आणि तिथून थेट हकालपट्टीचे आदेश आले. तातडीने कारवाई झाली. त्याची माहिती मंत्री भूपेंद्र यादव यांना नव्हती असं म्हणतात. पण, तसं होण्याची शक्यता कमी. अधिकाऱ्यांच्या अवैध गोष्टीही मंत्रीमहोदयांना माहिती नव्हत्या का, हा प्रश्न आहे. तसं असेल तर मंत्रालयावर त्यांचं नियंत्रण नाही असा अर्थ होतो. अधिकाऱ्यांचे कारनामे माहीत होते तर ही परिस्थिती उद्भवलीच कशी, असंही विचारलं जाऊ शकतं. भूपेंद्र यादव कार्यक्षम मंत्री व नेते असल्यानं या कारवाईची अधिक चर्चा होत आहे. यादव यांच्याही हकालपट्टीची चर्चा होत असली तरी तसं होण्याची शक्यता अगदीच कमी. मोदी सरकारमध्ये मंत्र्यांवर कारवाई केली जात नाही. शिवाय, यादव हे अमित शहांचे निष्ठावान. त्यांनी पश्चिम बंगाल जिंकून दिलेलं आहे, आता ते उत्तर प्रदेशची जबाबदारी घेऊ शकतील. प्रसिद्धीपासून लांब राहून, न बोलता काम करणं ही त्यांची शैली. अशा विश्वासू नेत्याला काहीच होणार नाही. पण, प्रश्न इतकाच आहे की, भूपेंद्र यादवांच्या नाकाखाली असं काहीतरी करण्याचं धाडस अधिकाऱ्यांनी केलंच कसं?

काँग्रेस, शिंदे की एनडीए?

माजी मुख्यमंत्री पृथ्वीराज चव्हाण यांनी राष्ट्रवादी काँग्रेस शरदचंद्र पवार यांच्या पक्षातील पाच-सहा खासदार अस्वस्थ आहेत असा दावा करून राज्यातील फोडाफोडीच्या आगीत आणखी तेल टाकून दिलं. त्यावर या पक्षाच्या खासदार सुप्रिया सुळेंनी ना काँग्रेस, ना एनडीए ना एकत्र राष्ट्रवादी; काहीच नाही असं सांगून टाकलं. खरं तर शरद पवारांच्या पक्षाचा डीएनए काँग्रेसचा असल्यामुळं त्यांनी काँग्रेसकडं गेलं पाहिजे, असं काहींना वाटू शकतं. असं म्हणतात की, त्याबाबत बोलणं चाललं होतं. अर्थात सुप्रिया सुळेंनी याचा इन्कार केलेला आहे. पवारांच्या राष्ट्रवादीला काँग्रेसमध्ये सामील होण्यात काही अडचण नाही, ती आहे काँग्रेसला. पवारांच्या पक्षातील ज्येष्ठ नेत्यांचं काय करायचं, त्यांचा पक्ष

विलीन झाला की, राज्यात दोन सत्ताकेंद्रं होणार. शरद पवारांकडं सूत्रं जाणार. त्यांना रोखणार कोण? केंद्रीय काँग्रेसमध्ये कोणाला काय द्यायचं? शरद पवारांची अदानींशी जिगरी दोस्ती, राहुल गांधींचं राजकारण अदानीविरोधी. पवारांचं मोदी सरकारशी काही वैर नाही, ते या सरकारविरोधात बोलतीलच असं नाही. अनेक मुद्द्यांवर ते मोदी सरकारशी सहमत असतात. मग, काँग्रेसमध्येच मतभेद वाढतील. समजा, त्यांच्या नेत्यांना काँग्रेसमध्ये घेतलं आणि नंतर त्यांच्या खासदार-आमदारांनी शिंदे गटात आणि भाजपमध्ये जाण्याची खटपट केली तर काँग्रेसच्या पायावर दगड पडणार. त्यापेक्षा लांब राहिलेलं बरं असं मत प्रदेश काँग्रेसने दिल्लीला कळवलं असं म्हणतात. आता राष्ट्रवादी काँग्रेसला मराठा कार्ड खेळावं लागतंय, असं शरद पवार-एकनाथ शिंदे भेटीनंतर म्हटलं जाऊ लागलं आहे. ते देवेंद्र फडणवीसांवर भारी पडू शकतं, म्हणूनच फडणवीसांनी दिल्लीतून 'एनडीए'त नवा भिडू नाही, असं ठणकावलं असावं आणि विधानसभेत हिंदीमध्ये आक्रमक पट्टीत कोणाला तरी इशारा दिला असावा! फडणवीसांनी वापरलेला हिंदी शब्दाचा अर्थ फार वेगळा होतो. त्यामुळं त्यांनी टट्टू की टट्टे याचा खुलासा करायला हवा! असो. नव्या संभाव्य ऑपरेशनमुळं फडणवीस प्रचंड संतापलेले आहेत, हे त्यांच्या भाषेवरून दिसलं. चेहऱ्यावर नेहमीच स्मित हास्य ठेवणाऱ्या फडणवीसांची ही शैली नाही हे खरंच!

तत्त्वज्ञ सौंदर्यवादी

आयुष्यभर संगीत करायचे आणि जीवनातील सौंदर्याच्या शोधात स्वत:ला हरवून टाकायचे, अशी मनोमन इच्छा असली, तरी ती फळाला येण्याचे भाळी लिहिलेले असतेच असे नाही. पं. सत्यशील देशपांडे यांना ते लाभले आहे. त्यांच्या अमृत महोत्सवानिमित्त त्यांच्या कारकीर्दीवर एक नजर...

छायाचित्र सौजन्य : राजहंस प्रकाशन

मुकुंद संगोराम

अमूर्ततेकडे सतत झेपावणाऱ्या संगीत या कलेकडे नष्ट होण्याचे प्राक्तन आहे. ती पाण्यावरची अक्षरेच. लाटेबरोबर धूसर होत जाणारी आणि नवी लाट येण्यापूर्वी पुन्हा एकदा नवी नक्षी तयार करत राहणारी ही अक्षरे मानवाच्या उत्क्रांतीमधील अतुलनीय अशी घटना आहे. त्यातही भारतीय अभिजात संगीतातील नवोन्मेषाचा खेळ त्याच्या रसिकांसाठी सतत नव्याची आस वाढवणारा. हे संगीत लिखित नाही, म्हणजेच पूर्वनिश्चित नाही. पण लोकसंगीतातून निर्माण झालेल्या लोकधुनांच्या विकास प्रक्रियेचे अतिशय सोप्या आणि ललित पद्धतीने विवेचन करणे, हे अभिजात संगीताची जाण वाढवण्यासाठी फारच महत्त्वाचे. पंडित सत्यशील देशपांडे यांच्यासारखा विचक्षण आणि बहुआयामी कलावंत जेव्हा हे विवेचन करू लागतो, तेव्हा त्यांच्या सान्निध्यात येणारा प्रत्येकजण अक्षरशः हरखून जातो. एकाच वेळी स्वरांशी लगट करत असतानाच, अन्य कलासंचाच्या परिघात बागडण्याची एकही संधी त्यांनी कधी सोडली नाही आणि आपल्याला झालेला, होत असलेला आनंद सगळ्यांना मुक्त हस्ते वाटण्यात कधी कसरही ठेवली नाही.

भारतीय अभिजात संगीताचा विश्वकोश असे त्यांचे वर्णन योग्य ठरेल. यासाठी गेली ६० वर्षे त्यांनी संगीताची प्रक्रिया अभ्यासली, त्याची नोंद केली आणि ते समजावूनही सांगितले. परंपरेतून येणाऱ्या नवतेचा आधार शोधता शोधता सत्यशीलजी सहजपणे अन्य कलांच्या प्रांतात मुशाफिरी करून येतात. मग त्यांना कधी बा. सी. मर्ढेकर आठवतात तर कधी कवी अनिल. कधी ग़ज़लेच्या प्रांतात हिंडताना सापडलेल्या शब्दांच्या स्वररचनांमधून प्रतीत होणारे सौंदर्य तर कधी पाश्चात्त्य संगीतात जिथे षड्जाशी संधान बांधून संगीत फुलत नाही, अशा रचनांमधील सौंदर्यस्थळे किंवा चित्रपट संगीतातील जिव्हारी लागणारी, दर्दभरी, असरदार स्वरस्थाने.. संगीतातील संगती शोधण्याचा हा प्रयत्न प्रत्येक कलावंत आपापल्या पद्धतीने करतच असतो, पण तो त्याच्या परिघाबाहेर जाण्याचे धाडस करत नाही. सत्यशील नेमके इथे वेगळे दिसतात. ते सगळ्याच कलावंतांच्या निर्मिती प्रक्रियेमागील इंगित शोधण्याचा प्रयत्न करतात. त्यांना हे शक्य होते, कारण ते स्वतः एक उत्तम दर्जाचे गायक कलावंत आहेत. रचनाकार आहेत. संगीताबद्दल लिहिणारे गोविंदराव टेंबे, वामनराव देशपांडे, अशोक दा. रानडे हेही संगीताच्या क्षेत्रात आपली कलात्मकता जपणारे कलावंत होते. बहुतांश वेळा प्रत्यक्ष गायन किंवा वादन करणारे कलावंत संगीताबद्दल बोलत नाहीत किंवा लिहीतही नाहीत. गायकाने जास्त बोलू नये, असा दंडक आला, तेव्हाची आणि आजची परिस्थिती निराळी आहे. आपल्याच कलेकडे तटस्थपणे पाहण्याएवढा निर्मळपणा बाळगून त्याची चिकित्सा किंवा मीमांसा करणारे कलाकार फारच थोडे. अशांपैकी पं. कुमार गंधर्व यांचे गंडाबंध शिष्य असणाऱ्या सत्यशील देशपांडे यांनी आयुष्यभर हा वारसा जपण्याचाच प्रयत्न केला आणि त्यामध्ये भरीव योगदान देण्यासाठी आपले सर्वस्व अर्पण केले. संगीताकडे इतक्या बहुविध संवेदनांच्या नजरेतून पाहताना, त्याचा उलगडा करण्यासाठी त्यांनी केलेला अभ्यास आणि केलेली मेहनत ठायीठायी जाणवत राहते.

स्वभावात मुळातच असलेला हजरजबाबीपणा आणि त्याला नर्म विनोदाची झालर, यामुळे गप्पांच्या मैफलीत सत्यशील यांची उपस्थिती 'चार चाँद' लावते. हाच गुण त्यांच्या लेखनातही इतका सहजपणे येतो, की वाचक हरखून जातो. त्यांचे वडील वामनराव देशपांडे हे व्यवसायाने चार्टर्ड अकौन्टन्ट होते. त्या काळातील भारतातील अग्रगण्य मानल्या गेलेल्या बाटलीबॉय कंपनीचे भागीदार होते. व्यवसायातील आपला तोरा वामनरावांनी अखेरपर्यंत सांभाळला. पण त्याच्या बरोबरीने किंबहुना काकणभर जास्त ते संगीतात रमले. सुरेशबाबू माने, हिराबाई बडोदेकर आणि नंतर मोगुबाई कुर्डीकर यांच्याकडे दीर्घकाळ गाणे शिकणाऱ्या वामनरावांनी संगीताबद्दल केलेले लेखन हे मराठी सारस्वताच्या दरबारातील एक अतिशय मानाचे पान ठरले आहे. या लेखनासाठी त्यांना एक वेगळी भाषा तयार करावी लागली. नवी विशेषणे आणि सहजसुलभ उदाहरणे यामुळे वामनरावांचे लेखन अतिशय मूलभूत ठरते. संगीताबद्दलचा विचार व्यक्त करण्यासाठी त्यांनी योजलेली भाषाशैली हे त्यांच्या लेखनाचे एक महत्त्वाचे वैशिष्ट्य म्हणावे लागेल. सत्यशील मात्र आपल्या वडिलांच्याही पुढे काही पावले गेले. ते म्हणतात, 'स्वर असतात बाराच, पण त्यांच्या संगती अगणित. या संगती हजारो आठवणी होऊन माझ्या मनावर कधी पाखर धरतात, कधी एल्गार करतात, तर कधी एकेकट्या हितगुज करतात. खरं तर, या स्वरसंगती म्हणजे जगभरातल्या गायक, वादक, रचनाकार आणि ऐकणाऱ्यांनीदेखील या स्वरांना बहाल केलेले संदर्भ (context) असतात. हे स्वरसंदर्भ ज्या प्रसंगी कानावर पडले, त्या प्रसंगापासून ते वेगळे करता येत नाहीत. त्यांचा अर्थ लावणारी माझी विचारशक्ती मात्र त्या त्या वेळची आणि तात्पुरती असते.'

वामनरावांमुळे मुंबईतील वाळकेश्वरच्या घरात संगीत अक्षरशः दुथडी भरून वाहात होते. मोगुबाई कुर्डीकर, कुमार गंधर्व, भीमसेन जोशी, गजाननबुवा जोशी, मल्लिकार्जुन मन्सूर, किशोरी आमोणकर, रविशंकर असे मागील शतकातील साऱ्या दिग्गजांनी सत्यशील यांचे बालपण स्वरमय करून टाकले. वडिलांच्या आग्रहामुळे चार्टर्ड अकौन्टन्सीची पहिली परीक्षा ते उत्तीर्णही झाले. पण संगीताने त्यांची परीक्षा पाहिली आणि त्यामुळे ते स्वरांच्या या गूढ आणि रम्य प्रदेशात सर्जनाच्या शोधात बाहेर पडले. संगीतासाठी हे फारच उपकारक ठरले, हेही खरेच. त्यांच्याकडे असलेली विलक्षण सौंदर्यदृष्टी आणि त्यामागे असलेली विचारांची पक्की बैठक यामुळे संगीताचे तत्त्वज्ञान ते नव्याने उमगू शकले. ते सर्वांसमोर सप्रयोग मांडू शकले. हे सगळे करता आले, याचे श्रेय ते कुमारजींना देतात. लोकधुनांपासून ते अभिजात रागदारी संगीतापर्यंत कुमारजींनी केलेला विचार सत्यशील यांच्या मनात खोल रुजला. संगीत म्हणजे काय, सौंदर्य म्हणजे काय, ते व्यक्त करण्यासाठीचे मूलभूत रसायन कोणते, शब्दांना स्वरांची झूल पांघरायची म्हणजे नेमके काय अशा अनेकानेक प्रश्नांचा धांडोळा घेणाऱ्या कुमारजींकडे गाणे शिकताना, सत्यशील स्वतःही विचार करू लागले होतेच. खरेतर विचारांचा हा प्रवास खूप लहानपणापासूनच सुरू होता. कुमारजींच्या सहवासाने त्याला एकप्रकारचा टोकदारपणा आला. संगीताबरोबरच अन्य सगळ्या कलांचा आस्वाद कसा घेता येतो, सौंदर्याची जाण आपल्यामध्ये कशी रुजवता येते, याचे मूर्तिमंत उदाहरण सत्यशील यांच्यासमोर कुमार गंधर्वांच्या रूपाने उभे ठाकले होते. त्यामुळेच ते असे लिहू शकतात...आमच्या ख्यालाचे रागतालाचे आडाखे बहुतांशी पूर्वकल्पित असल्यानं, जी. ए. कुलकर्णी किंवा ग्रेस यांच्या साहित्यामध्ये असते, ते अकल्पित आमच्या ख्यालगायनात असू शकत नाही. अकल्पित म्हणजे ज्याची आतापर्यंत कोणीच (किंवा आपण तरी) कल्पना केली नाही. हे अकल्पित सापेक्ष अस्त. गाण्यातलं हे अकल्पित अल्पजीवी अस्त. एकदा गायन झालं, की ते लगेच शिळं होतं...

आयुष्यभर म्हणजे अगदी आजच्या अमृतमहोत्सवी वर्षापर्यंत संगीतातील गूढरम्य प्रदेश शोधत राहण्याचा त्यांचा हा छंद त्यांच्या व्यक्तिमत्त्वाला एक वेगळी झळाळी देत राहतो. त्यांनीच स्थापन केलेल्या 'संवाद फाऊंडेशन' या संस्थेतर्फे त्यांनी केलेले काम अजरामर म्हणता येईल असे आहे. फोर्ड फाऊंडेशनच्या सहकार्याने त्यांनी भारतीय संगीतातील बंदिशींचा भलामोठा ठेवा ध्वनिमुद्रित करून ठेवला आहे. त्याबरोबरच काही पुस्तकेही प्रकाशित केली आहेत. संगीतातील सर्व परंपरांचा, त्यांच्यातल्या बारकाव्यांचा मुळापासून सखोल अभ्यास करण्याच्या या सुसंधीचे सत्यशील यांनी सोने केले आहे. १९५० पासूनची उपलब्ध ध्वनिमुद्रणे, ७८ आरपीएमच्या ध्वनिमुद्रिका, बुजुर्ग गायकांचे प्रत्यक्ष संवाद, संगीतातील निर्मितीचे तालक्रियेशी अविभाज्य नाते असल्याने तबलावादनाची ध्वनिमुद्रणे, ठुमरी व तिच्या उपप्रकारांची ध्वनिमुद्रणे, अप्रकाशित अशा सुमारे तीन हजार बंदिशींचे नोटेशन... असे पाच हजार तासांचे ध्वनिमुद्रण भारतीय संगीत परंपरेबद्दल आस्था असणाऱ्या कुणालाही सहजपणे उपलब्ध करून देणारा हा प्रकल्प म्हणजे सत्यशील यांच्या संगीतविषयक उन्नत जाणिवांचा एक उंचच उंच मनोरा आहे.

आयुष्यभर संगीत करायचे आणि जीवनातील सौंदर्याच्या शोधात स्वतःला हरवून टाकायचे, अशी मनोमन इच्छा असली, तरी ती फळाला येण्याचे भाळी लिहिलेले असतेच असे नाही. पं. सत्यशील देशपांडे यांच्या रूपाने असे जगता येणारे एक व्यक्तिमत्त्व आपल्यामध्ये आज आहे आणि आपल्याला अधिक सघन करण्यासाठी अतिशय उत्सुक आहे, हे आपल्या सर्वांसाठी कितीतरी सुखावह आहे. वयाचा अमृत महोत्सव साजरा करत असतानाही, सप्तसुरांचे इंद्रधनुषी स्वप्न सत्यात आणण्याचा त्यांचा सौंदर्यवादी विचार, त्यातील तत्त्वज्ञानाच्या गुंत्यात राहूनही अतिशय सुभगपणे आपल्यासमोर उलगडून उभा राहतो आहे, हे विशेष!

mukundsangoram@gmail.com

वक्तृत्वाचे उत्तुंग आणि विलोभनीय शिखर

पाच दशकांहून अधिक काळ आपल्या चिंतनशील आणि ओघवत्या वक्तृत्वाने महाराष्ट्राची श्रवण संस्कृती श्रीमंत करणारे वक्ते आणि तत्त्वचिंतक प्राचार्य शिवाजीराव भोसले यांच्या जन्मशताब्दी वर्षाला १५ जुलैपासून प्रारंभ होत आहे. त्यानिमित्ताने त्यांच्या चरित्रकाराने त्यांच्या कर्तृत्वावर टाकलेला दृष्टिक्षेप......

प्रा. मिलिंद जोशी

'बंधू-भगिनींनो' हे शब्द उच्चारताच सारं सभागृह स्तब्ध होऊन पांढरी पॅण्ट, पांढरा शर्ट आणि निळा कोट परिधान करणाऱ्या प्राचार्य शिवाजीराव भोसले यांच्या व्यक्तिमत्त्वाकडे एकाग्रचित्त होऊन पाहत असे आणि प्राचार्य आपल्या शब्द आणि विचार सामर्थ्यांच्या जोरावर त्यांना वेगळ्याच विश्वात घेऊन जात. एखादा धबधबा असावा आणि तो धीरगंभीरपणे कोसळत राहावा किंवा पाण्याने भरलेला मेघ असावा आणि तो बरसत राहावा इतके त्यांचे बोलणे प्रवाही आणि ओघवते होते. एका ध्वनी पातळीवर, विशिष्ट लयीत, कोठेही न थांबता, चुकूनही न अडखळता अत्यंत जलदगतीने तासनतास बोलत राहणारा वक्ता म्हणून त्यांचा नावलौकिक होता.

प्राचार्यांच्या व्यक्तिमत्त्वाचा विचार करीत असताना त्यांच्या ओघवत्या रसाळवाणीचा विनम्र श्रोता व्हावं की, त्यांच्या सिद्धहस्त लेखणीचा वाचक व्हावं, त्यांच्यातल्या तत्त्वचिंतकाला आदराने नमस्कार करावा की, त्यांच्यातल्या आदर्श शिक्षकापुढे विद्यार्थी म्हणून उभं राहावं, असा प्रश्न श्रोत्यांना पडत असे, आणि या चारही भूमिका पार पाडण्यात त्यांना धन्यता वाटत असे. सातारा जिल्ह्याच्या पूर्वेस कलेढोण या गावी जन्मलेल्या शिवाजीराजांच्या गंगौघासारख्या वक्तृत्वाचे उगमस्थान प्राथमिक शिक्षक असणारे त्यांचे वडील अनंतराव भोसले हेच होते. कलेढोण विटा या ठिकाणी प्राथमिक शिक्षण पूर्ण केल्यानंतर सातारा येथे कर्मवीर भाऊराव पाटील यांच्या शाहू बोर्डिंगमध्ये कमवा व शिका योजनेचा लाभ घेत शिवाजीराव शिकले.

मुलाने डॉक्टर, इंजिनीयर व्हावे असे वडिलांना वाटत होते म्हणून कोल्हापूरच्या राजाराम कॉलेजात शिवाजीरावांनी विज्ञान शाखेला प्रवेश घेतला पण कला शाखेला शिकविणाऱ्या प्रा. ना. सी. फडके यांच्या तासाला ते बसू लागले. कला शाखेच्या ओढीने प्रा. ना. सी. फडकेंच्या सांगण्यावरून शिवाजीरावांनी पुण्याच्या वाडिया महाविद्यालयात प्रवेश घेतला. स. प. आणि फर्ग्युसन महाविद्यालयात होणाऱ्या तासांना बसण्याची त्यांना परवानगी मिळाली होती. वाडिया, स.प., फर्ग्युसन हा सारा प्रवास ते सायकलवरून करीत आणि तास संपल्यानंतर खडकीत नोकरीला असलेल्या भावाकडे जेवणासाठी जात. टिळक रस्त्यावरील बादशाही खानावळीच्या जवळ वसंत विहारमध्ये भाड्याची खोली घेऊन ते राहत होते. तिथून महाराष्ट्र साहित्य परिषद, टिळक स्मारक मंदिर, पुणे नगर वाचन मंदिर, इतिहास संशोधक मंडळ, वेद्शास्त्रोत्तेजक सभा, वसंत व्याख्यानमाला ही वक्तृत्वस्थानं जवळ होती. तिथे रोज वक्तृत्वाची दिवाळी साजरी होत होती. विचारांचे सनई-चौघडे वाजत होते. आखीव, रेखीव, डौलदार, सुस्पष्टतेचा स्पर्श लाभलेला नामवंतांच्या वक्तृत्वाने शिवाजीरावांच्या अंतःकरणात वक्तृत्वाची बाग फुलवत ठेवली. पं. नेहरू, महात्मा गांधी, स्वा. सावरकर, डॉ. राधाकृष्णन, जे. कृष्णमूर्ती, आचार्य स. ज. भागवत, श्री. म. माटे, ना. सी. फडके, डॉ. पु. ग. सहस्त्रबुद्धे यांच्या अभ्यासपूर्ण वक्तृत्वाचा अनुभव घेताना त्यांच्या मनातली वक्तृत्वाची ज्योत प्रज्वलित होत गेली. उदंड वाचन, मनन, चिंतन या प्रक्रियांतून जाणीवपूर्वक ते आपल्या वक्तृत्वाला आकार देत होते.

एम. ए. पूर्ण केल्यानंतर त्यांनी पुण्याच्या आय. एल. एस. विधी महाविद्यालयातून कायद्याची पदवी घेतली. पण लॉर्डच्या शोधात निघालेला हा तत्त्वज्ञ मेलॉर्डची कसरत करू इच्छित नव्हता. आपण आपल्या अधिकारबळावर प्राध्यापक होऊ शकलो तर आजन्म आपल्या पायाखाली एक अढळ व्यासपीठ राहील या सुखद कल्पनेने अभ्यासमग्न झालेल्या शिवाजीरावांना प्राध्यापक होण्याचं भाग्य लाभलं. १९५७ साली महाराष्ट्रातले पहिले ग्रामीण महाविद्यालय फलटण येथे श्रीमंत मालोजीराजे नाईक निंबाळकर यांनी सुरू केले. तिथे तर्कशास्त्र शिकविणाऱ्या प्राध्यापकाची आवश्यकता होती. शिवाजीरावांनी अर्ज केला. महाविद्यालयाचे उद्घाटन यशवंतराव चव्हाण यांच्या हस्ते झाले. कर्मवीर भाऊराव पाटील याच कार्यक्रमासाठी फलटणला आले होते. एम. ए. एल. एल. बी. झालेल्या शिवाजीरावांना घेऊन कर्मवीर मालोजीराजांकडे गेले आणि म्हणाले, ''श्रीमंत, माझ्या ज्ञानरूपी वटवृक्षाची एक फांदी मी बरोबर आणली असून ती मी तुम्हाला देत आहे. तुम्ही ही ठेवून घ्या. या फांदीपासून एक वटवृक्ष तुमच्याकडेही निर्माण होईल.'' कर्मवीरांचे शब्द खरे ठरले आणि शिवाजीराव प्राध्यापक म्हणून रुजू झाले आणि प्राचार्य पदापर्यंत पोहोचले.

आकर्षक व्यक्तिमत्त्व, मधुर भाषा, विलक्षण भाषा प्रभुत्व, कंटाळा घालविणारे विनोद आणि विषय ज्ञानाची समृद्धता यामुळे तर्कशास्त्र, मानसशास्त्र आणि तत्त्वज्ञान या विषयांच्या तासाला विद्यार्थी श्रवणसमाधी अनुभवू लागले. हे वक्तृत्व वर्गापुरते मर्यादित न राहता जनमानसापर्यंत पोहोचलं पाहिजे, असं विद्यार्थ्यांना वाटू लागलं आणि प्राचार्यांना व्याख्यानाची निमंत्रणं येऊ लागली. विवेकानंदांची जन्मशताब्दी, शिला स्मारकाची निर्मिती, छत्रपतींच्या राज्यारोहण-सोहळ्याची त्रिशताब्दी, योगी अरविंदांची जन्मशताब्दी अशी निमित्तं त्यांना मिळत गेली. एसटीने प्रवास करून रोज चार पाच भाषणे होऊ लागली. तळपणारे ऊन असो, कोसळणारा पाऊस असो, कडाक्याची थंडी असो की भारत पाकिस्तानची क्रिकेटची मॅच असो, श्रोते प्राचार्यांच्या सभास्थानाच्या दिशेने येत राहिले.

कृष्णा-कोयनेचे, मुळा-मुठेचे आणि पंचगंगेचे पूर पाहणाऱ्या महाराष्ट्राने प्राचार्यांच्या व्याख्यानाच्या ओढीने येणारे लोकगंगेचा पूर पाहिला. कधी महापुरुषांच्या चरित्रवनातली आनंदयात्रा, तर कधी प्रमेयांच्या उद्यानातलं पर्यटन, कधी साहित्य सोनियाच्या खाणीतली भ्रमंती, तर कधी संतविचारांचे निरूपण करीत त्यांच्या वक्तृत्वाची गंगा महाराष्ट्राच्या खेड्यापाड्यातून मराठी माणसांच्या मनाचा प्रदेश सुपीक करीत वाहत राहिली. देशाच्या सीमा ओलांडून सातासमुद्रापार गेली. महाराष्ट्रात असं एकही गाव नसेल जिथे प्राचार्य गेले नसतील. अशी एकही व्याख्यानमाला नसेल जिथे ते बोलले नसतील, असा एकही विषय नसेल ज्यावर त्यांनी प्रतिपादन केले नसेल. प्राचार्य भोसले सर म्हणजे मराठी वक्तृत्वाचा मानदंड, त्यांचे शब्द म्हणजे महाराष्ट्राची सांस्कृतिक वाणी असं लोक म्हणू लागले.

प्राचार्य शिवाजीराव भोसले

पुण्यात एकदा 'सोबत'कार ग. वा. बेहेरे यांचे स्वातंत्र्यवीर सावरकर या विषयावर व्याख्यान होते. प्राचार्य समारंभाचे अध्यक्ष होते. प्राचार्यांची परीक्षा घेण्यासाठी बेहेरे म्हणाले, 'आज माझे भाषण आहे खरे, पण माझ्या अंगात ताप आहे. तेव्हा आपल्या परवानगीने मी थोडीशी उलटापालट करतो. शिवाजीराव आज वक्ते म्हणून सावरकरांवर बोलतील आणि आवश्यक असेल तर समारोपादाखल मी थोडेसे बोलेन. ग. वा बेहेऱ्यांनी ही आठवण लिहून ठेवली आहे. ते लिहितात, शिवाजीराव शांतपणे उठले. माइकसमोर उभे राहिले आणि त्यांनी दोन तास सावरकरांची गीता समोरच्या अर्जुनाला सांगितली. पिसारे फार काळ फुलवून ठेवता येत नाहीत. मूळ काया आणि तिचे अंतरंग हेच खरे असतात याची जाणीव मला झाली. त्या क्षणी त्यांना दंडवत घालावा असं मला वाटत होतं. अशा परीक्षा सुरू असतानाही काही संशय घेणारी मंडळी होती. त्यांना वाटले की हे पाठांतर आहे पण पुढे काळ बदलला, प्रसंग पालटले, आयत्या वेळेस बोलण्याचे अनेक प्रसंग आले त्यावेळी सर्वांनी मान्य केले की हे केवळ पाठांतर नाही, कृत्रिम पांडित्य नाही. त्यांच्या भाषणाला चिंतनाची किनार आहे. अध्ययनाचे कान आहेत. वाणीला नादाचे मुलायम अस्तर आहे. शुद्धतेचा आणि सुस्पष्टतेचा परिसस्पर्श आहे. त्यांचा शब्द शब्द नसतो तर तो अनुभव घेऊन निथळतो म्हणूनच तो आशयघन असतो. तो आशयाच्या घनतेचे पिसारे फुलवतो. तो हलकाफुलका वाटत असला तरी त्याला अर्थाच्या अनेक परी असतात त्या परीने तो खुलत जातो म्हणून त्यांचे भाषण बेमालूमपणे रंगत जाते.

प्राचार्य शिवाजीराव भोसले यांच्या ८० व्या वाढदिवसानिमित्ताने त्यांचा सत्कार करताना शिवशाहीर बाबासाहेब पुरंदरे, डावीकडून मिलिंद जोशी आणि स्वामी भौमानंद

प्राचार्यांचं अमोघ वक्तृत्व आणि त्यांची प्रचंड लोकप्रियता यामुळे त्यांनी राजकारणात यावं, यासाठी सर्व पक्षांकडून विपुल प्रयत्न झाले. खुद्द यशवंतराव चव्हाण यांनी प्राचार्यांच्या राजकीय महत्त्वाकांक्षेचा वेध घेण्याचा अनेकदा प्रयत्न केला. पण प्राचार्य राजकारणात न जाण्याच्या आपल्या मतावर ठाम राहिले. बॅ. बाबासाहेब भोसले राजकारणात असताना त्यांना एक प्रश्न नेहमी विचारला जायचा, 'प्रचारसभांसाठी ते सहजतेने सभा जिंकणाऱ्या आपल्या भावाला का बोलवत नाहीत?' त्यावर बाबासाहेब उत्तर देत, ''बापू तत्त्वनिष्ठ, अरविंदभक्त. ते माझ्या सभांना येणार नाहीत.'' प्राचार्यांच्या तत्त्वनिष्ठेइतकाच बाबासाहेबांच्या मनाचा मोठेपणाही महत्त्वाचा आहे. त्याच काळात प्राचार्यांना आदर्श महाविद्यालयीन शिक्षक म्हणून राष्ट्रपतिपदक मिळालं. आपले बंधू मुख्यमंत्री असताना हा पुरस्कार स्वीकारणं प्राचार्यांना प्रशस्त वाटलं नाही. प्राचार्य समारंभाला अनुपस्थित राहिले.

फलटणच्या मुधोजी महाविद्यालयात २५ वर्षांहून अधिक काळ प्राचार्यपद भूषविताना आपल्या कारकीर्दीत फीसाठी पैसे नसलेल्या एकाही विद्यार्थ्यांचं शिक्षण त्यांनी अडू दिलं नाही. एकाही सहकाऱ्याला मेमो दिला नाही. एकाही सेवकाला नोकरीला मुकावे लागले नाही. महाविद्यालयाच्या स्नेहसंमेलनासाठी कधीही पोलिसांना पाचारण करावे लागले नाही. अत्यंत प्रतिकूल परिस्थितीत मराठवाडा विद्यापीठाचे कुलगुरूपद भूषवीत त्यांनी आपला कार्यकाळ पूर्ण केला.

प्राचार्य हे सोनोपंत दांडेकरांचे विद्यार्थी. त्यांना गुरुदेव रानडेंचे अनेक वेळा दर्शन घडले. ते कन्याकुमारीला गेले. पाँडेचेरीला राहिले. त्यांनी बेलूर मठ पाहिला. ते रमण महर्षींच्या आश्रमात राहिले. पवनारचे परंधाम आणि वर्ध्याची गांधीजींची झोपडीही त्यांनी पाहिली. प्राचार्यांना ज्यांचे आकर्षण वाटत होते, ती सारी मोठी माणसे एका विचारांची नव्हती. त्यांच्या जीवनदर्शनात विविधता होती. अनेकांची अशी अपेक्षा असते, की ज्यांना सावरकर आवडतात, त्यांना गांधी आवडू नयेत. जे टिळकांना मानतात, त्यांनी आगरकरांना विसरावे. जे बुद्धिवादी आणि विज्ञाननिष्ठ असतील, त्यांच्या मनाला भावनांचे पाझर फुटू नयेत. या संदर्भातली आपली भूमिका विशद करताना प्राचार्य सांगतात, ''उद्यानातील रंगीबेरंगी फुलांचे ताटवे पाहून, अरण्यातील अनेकविध उत्तुंग वृक्ष पाहून, आकाशातील असंख्य नक्षत्रे पाहून आपली दृष्टी कधी अधू होते का? मग मानव्याचे नानाविध आकार आणि प्रकार पाहून आपण भांबावून का जावे? या आनंददायक विविधतेचे विश्वरूप दर्शन का टाळावे?'' प्राचार्यांचे हे विचार आजच्या काळात महत्त्वाचे आहेत.

प्राचार्यांचे संपूर्ण जीवन म्हणजे स्फूर्तीची गाथाच. मरगळलेल्या मनाला नवचैतन्य देण्याचे सामर्थ्य त्यांच्या विचारात, वक्तृत्वात आणि जीवनविषयक तत्त्वज्ञानात आहे. महापुरुषांच्या जीवनचरित्राचे निमित्त करून त्यांनी उगवत्या पिढीच्या उमलत्या बुद्धीभोवती विचारांची आरास मांडली. रात्री लवकर निजणारे, पहाटे लवकर उठणारे, नियमितपणे फिरायला जाणारे, न चुकता योगासने-प्राणायाम करणारे, मेथीची भाजी, भाकरी आणि वरणभाताचा मित आहार घेणारे, व्याख्यानापूर्वी आणि नंतर एकांताला जवळ करणारे प्राचार्य उच्च कोटीतले साधक होते. त्यांच्या भाषणांनी माणसे नुसती भारावून गेली नाहीत किंवा पेटून उठली नाहीत, तर ती अंतर्मुख होऊन विचार करायला लागली, हे त्यांच्या वक्तृत्वाचे वेगळेपण. श्रोत्यांचे मनोरंजन हा प्राचार्यांच्या वक्तृत्वाचा कुलाचार कधीच नव्हता. मानव्याची प्रतिष्ठापना हेच त्यांच्या वक्तृत्वाचे ब्रीद होते. लोकांना प्रबोधनाच्या प्रकाशवाटा दाखविणे हेच त्यांच्या वक्तृत्वाचे ध्येय होते. भाषेचे सौंदर्य, कल्पनेचे वैभव, विचारांची उदात्तता आणि शैलीची नादमयता यांचा अपूर्व असा संगम प्राचार्यांच्या वक्तृत्वात होता. शब्द, लय आणि विचार यांच्या माध्यमातून प्राचार्य विचारांची एक दीपमाळ श्रोत्यांसमोर प्रज्वलित करीत आणि जाणकार श्रोते आपल्या ज्ञानपणत्या पेटवून एक प्रकारे ज्ञानाचा दीपोत्सव साजरा करीत.

व्याख्यानानिमित्ताने घडलेल्या भ्रमंतीच्या नादात त्यांच्या वाणीने त्यांच्या लेखणीवर मात केली. वृत्तपत्रांच्या सदरातून ते लिहीत राहिले. त्यांनी मोजके लिहिले, पण पुढच्या अनेक पिढ्यांना उपयुक्त ठरेल असे लिहिले. 'मुक्तिगाथा महामानवाची', 'दीपस्तंभ', 'यक्षप्रश्न', 'कथा वक्तृत्वाची', 'देशोदेशीचे दार्शनिक', 'जागर', 'हितगोष्टी' यांसारख्या त्यांच्या ग्रंथांनी मराठी साहित्यातील चरित्रात्मक आणि वैचारिक ग्रंथांचे दालन समृद्ध केले.

उद्या जे कोणी ही वैखरीची वाट चोखाळतील, ते या वाटेवरून जाताना क्षणभर थांबतील, या वाटेवर कर्तृत्वाचा कळसाध्याय निर्माण करणाऱ्या भोसले सरांचे स्मरण करतील. प्राचार्य शिवाजीराव भोसले त्यांच्या जीवनमार्गावरचा दीपस्तंभ असतील.

(लेखक प्राचार्य शिवाजीराव भोसले यांचे चरित्रकार असून शिवाजीराव भोसले स्मृती समितीचे अध्यक्ष आहेत.)

joshi.milind23@gmail.com

आकार लेती विपत्ति कथा

कैपजेमिनी रिसर्च इंस्टीट्यूट और यूबीएस ग्लोबल वेल्थ की रिपोर्ट बताती है कि संसार में औसत संपत्ति तो बढ़ी है, लेकिन आम आदमी की माली हालत में गिरावट आई है। एक तरफ, जहां एलन मस्क जैसे नए-नए धनावतार खानदानी धन्ना सेठों को पीछे छोड़ रहे हैं, तो वहीं आर्थिक रूप से निचले पायदान पर बैठे लोगों का जीवन दुरूह होता जा रहा है।

आजकल स्तंभ के तहत प्रकाशित आलेखों के लिए

शशि शेखर

आजकल

भारत में करोड़पतियों और हाई नेट-वर्थ इंडिविजुअल्स (एचएनआई) की संख्या में लगातार बढ़ोतरी हो रही है। पिछले वित्तीय वर्ष में देश के 5,012 नए लोगों को एचएनआई क्लब में शामिल होने का मौका मिला है। इसके साथ ही भारत में करोड़पति परिवारों की कुल संख्या बढ़कर 8 लाख, 71 हजार से अधिक हो गई है। आप चाहें, तो इस खुशनुमा आंकड़े पर इतरा सकते हैं, लेकिन इसी रपट के कई बिंदु उदास कर जाते हैं।

भारत में आर्थिक विषमता लगातार बढ़ रही है और इससे मध्यम वर्ग में हताशा फैल चली है।

जो नहीं जानते, उन्हें बता दूं कि एचएनआई उन लोगों को माना जाता है, जिनके पास अपनी तमाम देनदारियों को घटाने के बाद 10 लाख डॉलर, यानी लगभग 9.5 करोड़ रुपये या उससे अधिक मूल्य की ऐसी संपत्ति हो, जिसे आसानी से नकदी में बदला जा सके। पिछले साल इस क्लब में शामिल होने वालों में लगभग छह फीसदी की बढ़ोतरी हुई, जो अपेक्षाकृत कम है। साल 2021 से 2023 के बीच शेयर बाजार और रियल एस्टेट में भारी उछाल के कारण यह वृद्धि दर पांच से नौ प्रतिशत के बीच आंकी गई थी। ये वे खुशनसीब लोग हैं, जिनके हाथों में भारत की 65 से 75 फीसदी संपत्ति या कारोबार है।

इस आर्थिक विषमता के शिकार हम अकेले नहीं हैं। अमेरिका, चीन, जापान जैसे विकसित मुल्कों के साथ अधिकांश विकासशील देशों में यह प्रवृत्ति जोर पकड़ती जा रही है। कैपजेमिनी रिसर्च इंस्टीट्यूट और यूबीएस ग्लोबल वेल्थ की रिपोर्ट बताती है कि संसार में औसत संपत्ति तो बढ़ी है, लेकिन आम आदमी की माली हालत में गिरावट आई है। एक तरफ, जहां एलन मस्क जैसे नए-नए धनावतार खानदानी धन्ना सेठों को पीछे छोड़ रहे हैं, तो वहीं आर्थिक रूप से निचले पायदान पर बैठे लोगों का जीवन दुरूह होता जा रहा है।

यही वजह है कि समूची दुनिया बढ़ते अपराध, अवसादग्रस्त लोगों की पनपती जमात और उससे उपजते असंतोष की ओर बढ़ रही है। यह सिलसिला पारिवारिक, सामाजिक और प्रशासनिक ताने-बाने के साथ संप्रभु देशों की प्रभुसत्ता को भी चुनौती दे रहा है। पड़ोस के कुछ उदाहरणों से शुरू करता हूं।

श्रीलंका, बांग्लादेश और नेपाल में पिछले कुछ महीनों के अंदर हुए प्रदर्शनों को याद कीजिए। श्रीलंका में तो असंतुष्ट लोगों ने राष्ट्रपति भवन तक कब्जा लिया था। इसी बेचैनी ने इन तीनों देशों में सत्ता-परिवर्तन कराया। यह बात अलग है कि ये बदलाव अभी अग्नि-परीक्षा के दौर से गुजर रहे हैं। सिर्फ दक्षिण एशिया ही नहीं, केन्या सहित तमाम अफ्रीकी, लातीनी और कभी हम पर हुकूमत कर चुके ब्रिटेन तक में कई उग्र प्रदर्शन हो चुके हैं।

हमारे पड़ोस के मुल्कों में जब उपद्रव चल रहा था, तब मैं वहां के नौजवानों के गुस्से को गौर से देख रहा था। लगभग सभी जगह राजनेताओं, धनाढ्यों और प्रभु वर्ग के बच्चों की रीलें दिखाते हुए आंदोलनकारी असंतोष व्यक्त करते पाए जाते कि हम दो जून की रोटी को तरस रहे हैं और वे विलासरत हैं। शुक्र है, भारत में ऐसी स्थिति नहीं है, लेकिन हालात सहज और सरल भी नहीं हैं। भारत में जिस तरह 'लग्जरी लाइफ स्टाइल' की चाहत में पढ़े-लिखे नौजवान और नवयुवतियां साइबर अपराधों में लिप्त हो रहे हैं, उसके बढ़ते आंकड़े चौंकाते हैं।

उपभोक्तावाद ने नौजवानों के बीच 'फोमो फैक्टर' को खतरनाक हद तक बढ़ा दिया है। आर्थिक विषमता इस अग्नि में तेल का काम कर रही है।

अब इस मुद्दे के दूसरे पहलू पर आते हैं। अक्सर कहा जाता है कि यदि भारत को आर्थिक तौर पर पनपना है, तो उसे अपनी कार्य-कुशलता, अर्थनीति और वैश्विक आवश्यकताओं के बीच तालमेल बैठाना होगा। कहने में तो यह अच्छा लगता है

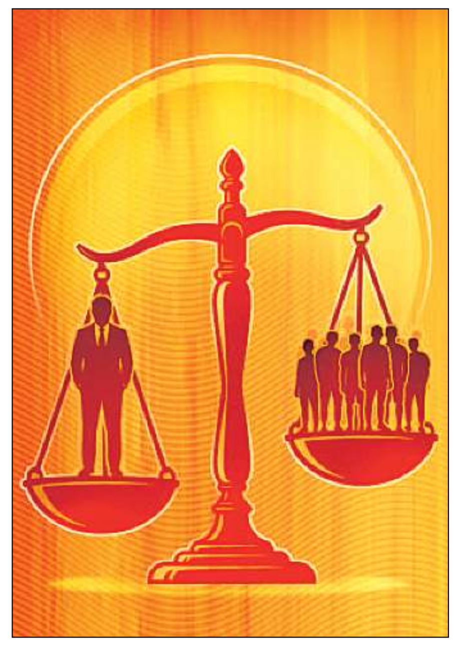

कि हमारे पास दुनिया के सर्वाधिक स्नातक और इंजीनियर हैं, लेकिन जब उन्हें उत्पादकता की कसौटी पर कसा जाता है, तो वे उपयुक्त साबित नहीं होते। एक शोध के अनुसार भारतीय स्नातकों में से कुल 56.35 प्रतिशत ही रोजगार के योग्य हैं, यानी 43 फीसदी से अधिक नौजवान मौजूदा व्यवस्था में महज जद्दोजहद के लिए अभिशप्त हैं। उत्पादकता के योग्य स्नातकों में अधिकांश इंजीनियर हैं। इनमें भी सर्वाधिक मांग कंप्यूटर साइंस स्नातकों की है। हालांकि, उन्हें भी एआई के बढ़ते दौर में कड़ी चुनौतियों का सामना करना पड़ रहा है। क्या वे इसके लिए प्रशिक्षित हैं? तय है, कोडिंग या थ्योरी जानने के बावजूद केवल 46 प्रतिशत इंजीनियर ही कारगर साबित होने के काबिल हैं। इन्हें भी 'क्रिटिकल थिंकिंग' और 'सॉफ्ट स्किल' के मामले में कड़ी मेहनत करनी होगी।

मतलब साफ है। हमारी उत्पादक मानी जाने वाली आबादी में बड़ी संख्या में नौजवान अभी से तमाम चुनौतियों से रू-ब-रू हैं और अभी सफल माने जाने वालों को कल कड़े इम्तिहान के दौर से गुजरना है।

अफसोस इस बात का है कि इस रिक्ति को भरने के लिए हमारे पास बहुत वक्त नहीं बचा है। जो लोग भारत को 'नौजवानों का देश' कहते हैं, उन्हें जानकर धक्का लगेगा कि देश में कुल जमा 66 फीसदी ही काम करने लायक आबादी है। इनकी उम्र 15-59 वर्ष के बीच है। मतलब साफ है, इस 'डेमोग्राफिक डिविडेंड' का लाभ उठाने के लिए हमारे पास अधिक समय नहीं बचा है। हमें अपने सभी अंतर्विरोध 2035 से 2040 तक समाप्त करने होंगे। ऐसा न होने पर भारत अमीर होने से पहले बूढ़ा हो सकता है।

यह संयोग नहीं है कि दुनिया के अधिकांश देश इस विपत्ति के शिकार हैं। अगर ये देश अपने कार्यबल की दक्षता में बढ़ोतरी नहीं करेंगे, तो वे एआई व ऑटोमेशन के पनपते दौर में और पिछड़ जाएंगे। इससे विश्व में नव-उपनिवेशवाद का खतरा बढ़ जाएगा, जिसकी अभी से शुरुआत हो चुकी है। अमीर देशों के आगे लोकतंत्र और मानवाधिकारों की पोषक संयुक्त राष्ट्र संघ जैसी संस्थाएं तक नतमस्तक हैं। यही वजह है कि यूक्रेन पर रूस का आक्रमण पांचवें वर्ष में प्रवेश करने जा रहा है और इजरायल गाजा में महीनों तक नरसंहार करता रहा। बाद में, उसने अमेरिका के साथ ईरान पर हमला बोल दिया। यह बात अलग है कि यूरोप और अमेरिका के दम पर यूक्रेन आज तक रूस के खिलाफ खड़ा है। ईरान भी चीन और रूस की मदद से अमेरिका की नाक में दम किए हुए है, लेकिन इन युद्धों से दुनिया का मौजूदा निजाम खतरे में पड़ गया है।

इसके साथ ही यह सवाल भी बुलंद हो गया है कि राष्ट्रीय और सामाजिक विषमता का यह कहर अगर यहीं नहीं रुका, तो क्या होगा? भुखमरी, तीसरा विश्व-युद्ध, परमाणु विनाश या और कुछ?

@shekharkahin
@shashishekhar.journalist

जीना इसी का नाम है

लाइचट पॉल वांगपान
सैन्य अधिकारी

चौकीदार से मेजर बनने का बेमिसाल सफर

अपनी बहादुरी और प्रतिबद्धता की बदौलत वांगपान ने जल्द ही सिख लाइट इन्फैंट्री में जगह बना ली। उनकी दक्षता को देखते हुए पिछले ही महीने उन्हें मेजर के पद पर पदोन्नत किया गया है। अरुणाचल के वांचो आदिवासी समुदाय से सैन्य अधिकारी बनने वाले वह पहले व्यक्ति हैं।

दशकों पहले मजरूह सुल्तानपुरी ने *ममता* फिल्म के लिए ये पंक्तियां लिखी थीं- *रहे न रहे हम, महका करेंगे। बनके कली, बन के सबा बाग-ए-वफा में...* ये पंक्तियां बेहद मानीखेज हैं। ये हर उस शख्स से वाबस्ता हैं, जिसने एक मिसाली जिंदगी जी है। गांव-शहर, सूबा-सूबा, देश-देश, ऐसे कई लोग हैं, जिनकी समाधियों या जन्मभूमि से गुजरते हुए हमारी गर्दन सम्मान में झुक जाती है या उस माटी से प्रेरित होकर उसकी तरफ मुड़ जाती है। अरुणाचल का एक घर ऐसा ही है, जहां जीवट के धनी लाइचट पॉल वांगपान पैदा हुए।

इस प्रदेश के लोंगडिंग जिले में एक छोटा-सा गांव है लोंगफोंग। वांगपान यहीं के एक गरीब वांचो परिवार में पैदा हुए। वांचो अरुणाचल का प्रमुख आदिवासी समुदाय है। गांव के ही सरकारी स्कूल से शिक्षा आरंभ हुई, मगर वह मुकम्मल न हो सकी। जैसा कि अक्सर गरीब बच्चों के साथ होता है, वांगपान को भी अपने परिवार की आर्थिक मदद के लिए पढ़ाई छोड़कर काम पकड़ना पड़ा। तब वह आठवीं जमात में थे। संयोग से सीमा सड़क संगठन के जनरल रिजर्व इंजीनियर फोर्स (जीआरईएफ) में रात्रि-चौकीदार का काम मिल गया। वांगपान ने काम करना तो शुरू कर दिया था, मगर इसे अपनी नियति मानने को वह तैयार न थे।

दुर्गम इलाकों के बाशिंदे शरीर से ही मजबूत नहीं होते, उनके इरादे भी फौलादी होते हैं। फौजियों के बीच रहते हुए वांगपान पर वर्दी का आकर्षण कुछ यूं तारी हुआ कि उन्होंने ठान लिया कि वह फौजी वर्दी पहनकर ही रहेंगे। नौकरी करते हुए वांगपान ने दूरस्थ शिक्षा के तहत पढ़ाई फिर से शुरू कर दी। तब क्या ही उम्र रही होगी! पर घर की मदद की मजबूरी, रात-रात भर जागकर चौकीदारी की जिम्मेदारी और फिर परीक्षा की तैयारियों ने वांगपान को आराम के बारे में सोचने का अवकाश भी कहां दिया?

मेहनत रंग लाई, वह सेना में बतौर जवान चुन लिए गए थे। जाहिर है, पूरा गांव खुश था, मगर वांगपान के लिए तो यह बस एक पड़ाव था। कहते हैं, कामयाबी का मद लोगों को बिगाड़ देता है, पर अगर उसका चस्का लग जाए, तो जिंदगी संवर जाती है। वांगपान ने अपने लिए अब एक नई मंजिल मुकर्रर की थी- सैन्य अधिकारी बनने की मंजिल! यह कोई आसान लक्ष्य नहीं था, पर जीवन ने उन्हें आसानी अब तक बख्शी ही कहां थी? एक फौजी की लंबी अनुशासित दिनचर्या होती है। वांगपान को रात में ही किताब पलटने की मोहलत मिलती।

जैसे अर्जुन की साधना निर्णायक पलों में चिड़िया की आंख पर केंद्रित हो गई थी, वांगपान का ध्यान सेवा चयन बोर्ड (एसएसबी) की परीक्षाओं पर जा टिका था। इसके लिए कॉलेज की न्यूनतम अनिवार्य डिग्री की दरकार थी। वांगपान के पास कोई विकल्प नहीं था। उन्हें हर भूमिका के साथ इंसाफ

करना था। वह दिन भर सैन्य जवान के कर्तव्य निभाते और देर रात तक पढ़ाई करते। दूरस्थ शिक्षा के जरिये ग्रेजुएशन की डिग्री मिलते ही ऑफिसर रैंक की परीक्षा के लिए उनका रास्ता खुल गया था। जाहिर है, सैन्य अधिकारियों को चुनने की प्रक्रिया बेहद कठिन है, अंतिम चयन से पहले अभ्यर्थियों का पांच दिनों तक कठोर मूल्यांकन होता है। वांगपान के लिए सहूलियत यह थी कि वह फौजी थे और इस पूरी प्रक्रिया को अच्छी तरह जानते थे।

साल 2020 के जून में वह पल आ ही गया, जब वांगपान की वर्षों पुरानी साध पूरी हुई। वह सिख लाइट इन्फैंट्री में लेफ्टिनेंट के ओहदे पर कमीशन हुए। यह उनके लिए कितनी बड़ी उपलब्धि थी, इसका अंदाजा सिर्फ इस तथ्य से लगाया जा सकता है कि वांचो आदिवासी समुदाय से कमीशन प्राप्त करने वाले वह पहले व्यक्ति हैं। जाहिर है, पूरे अरुणाचल के लिए वह गौरव का पल था। मुख्यमंत्री प्रेमा खांडू ने निजी तौर पर उन्हें बधाई देते हुए प्रदेश के लाखों नौजवानों के लिए एक प्रेरक व्यक्तित्व बताया। वांगपान के ऊपर दोहरी जिम्मेदारी थी। एक भारतीय सैन्य अधिकारी होने के नाते अपेक्षित जिम्मेदारियों का अचूक निर्वाह और दूसरी, वांचो समुदाय के युवाओं को देश की मुख्यधारा से जुड़ने के लिए प्रेरित करना।

भारतीय सेना की सबसे बड़ी विशेषता यही है कि इसमें धर्म, जाति, रंग और समुदाय से नहीं, बहादुरी और प्रतिबद्धता से पहचान बनती है, अपनी दिलेरी और समर्पण भाव की बदौलत वांगपान ने जल्द ही इन्फैंट्री में अपनी जगह बना ली। उनके अनुभव, उनकी दक्षता को देखते हुए पिछले ही महीने उन्हें मेजर के पद पर पदोन्नत किया गया है। निस्संदेह, उन्होंने यह मुकाम अपनी काबिलियत से हासिल किया है और यह उनकी व्यक्तिगत उपलब्धि है, मगर उनके साथ-साथ वांचो समुदाय भी पदोन्नत हुआ है। वांगपान की अगली हर उपलब्धि पूरे अरुणाचल, खासकर उनके समुदाय के लिए गौरव के पल लेकर आएगी। यह बात वह भी जानते हैं, लेकिन वह अपने प्रदेश व समुदाय से और मिसालें चाहते हैं। इसलिए लेफ्टिनेंट बनने के बाद उन्हें जब भी पूर्वोत्तर भारत की नई पीढ़ी से बात करने का मौका मिला, उन्होंने उन्हें ऊंचे सपने देखने और उसके लिए खूब पढ़ने को प्रेरित किया।

हमारे समाज को वांगपान का क्यों कृतज्ञ होना चाहिए? क्योंकि अपने परिश्रम, अपनी क्षमताओं से उन्होंने न सिर्फ अपनी उपलब्धियों को विस्तार दिया है, बल्कि लाखों आंखों

जहां के किशोर आसानी से नशे की गिरफ्त में आ जाते हों, वहां का एक गरीब युवा स्कूल छोड़कर चौकीदारी करने को मजबूर हो जाता है, पर गलत रास्ता नहीं चुनता। अपनी मजबूरी को पैरों की बेड़ियां नहीं बनने देता, बल्कि ऊंचे सपने देखता है और उसे साकार करता है। है न फख्र की बात!

में नए सपनों के बीज बोए हैं। जिस प्रदेश के किशोर आसानी से नशे की गिरफ्त में आ जाते हों, वहां का एक गरीब किशोर किताब छोड़कर चौकीदारी करने को मजबूर हो जाता है, पर गलत रास्ता नहीं चुनता। अपनी मजबूरी को पैरों की बेड़ियां नहीं बनने देता, बल्कि एक राष्ट्र-प्रहरी बनने के सपने देखता है, उसके लिए जीतोड़ उद्यम करता है और फिर अपने सपने को साकार करता है। ऐसे सपूत पर अरुणाचल ही नहीं, पूरे हिन्दुस्तान को फख्र होना चाहिए।

प्रस्तुति : चंद्रकांत सिंह

वो लम्हा

डिएगो माराडोना
फुटबॉल का जादूगर

जो फुटबॉल के साथ सोया और जागा

उस कच्ची बस्ती में एक गरीब परिवार रहता था और आठ बच्चों के परिवार में चार बेटियों के बाद जो बेटा जन्मा था, वह मां-बाप का लाडला था। वह असली फुटबॉल के लिए बहुत जिद करता था, पर मजदूर पिता किसी तरह से उसे छोटे-मोटे खिलौनों से फुसलाए रखते थे।

शहर की सबसे बदहाल कच्ची बस्ती थी विला फियोरिटो। उस पर जब बादल बरसते थे, तब मानो जहन्नुम ही उतर आता था। झुग्गियों पर टीन की छतें थीं, जिनके नीचे छिपे बच्चों को लगता था कि बाहर से ज्यादा पानी अंदर बरस रहा है। टपकते पानी को बर्तनों में इकट्ठा किया जाता और उस पानी को मां-पिता बाहर उस गली में फेंकते रहते थे, जो कीचड़ भरा नाला हो जाती थी।

इसी कच्ची बस्ती में एक गरीब परिवार रहता था और आठ बच्चों के परिवार में चार बेटियों के बाद जो बेटा जन्मा था, वह मां-बाप का लाडला था। वह असली बॉल के लिए बहुत जिद करता था, पर पिता किसी तरह से उसे छोटे-मोटे खिलौनों से फुसलाए रखते थे। मजदूर पिता के पास बच्चों को पढ़ाने के पैसे नहीं थे, तब असली बॉल खरीदने लायक पैसे कहां से आते? पिता बच्चों से बचते हुए सुबह घर से निकल जाते और देर रात लौटते।

बहरहाल, उस बच्चे का चौथा जन्मदिन था और छोटा आयोजन किया गया, जिसमें चाचा के परिवार को भी बुलाया गया। संयोग देखिए, चाचा उपहार में फुटबॉल ले आए और शुभकामनाएं देते हुए कहा कि फुटबॉल से तकदीर बदल जाती है, इसे संभालकर रखना। बच्चे की एक बड़ी पुरानी और पहली तमन्ना पूरी हुई। वह खुशी से झूम उठा, मानो जिंदगी में सिर्फ फुटबॉल की ही कमी थी। फिर क्या था, उसे फुटबॉल का रोग हो गया। उठते-बैठते हर पल फुटबॉल लिए रहने लगा। सोता भी, तो पैर या सिर से फुटबॉल लगाए रहता। बगैर बॉल बहुत बेचैन हो जाता। नतीजा यह कि वह जैसे-जैसे बड़ा हुआ, फुटबॉल उसकी पहचान बनती गई। एक बार तो वह अपनी कच्ची बस्ती की पतली सर्पिली गलियों में गेंद का पीछा करते ड्रेन में जा गिरा, गले तक गंदगी में होने के बावजूद वह खुद को नहीं, बॉल को बचाने में लगा था, तब पड़ोस के एक अंकल ने उसे बचाया था।

गली के बच्चे तो उस पर मुग्ध थे, क्योंकि वह उनके लिए गेंद का जादूगर था। वह फुटबॉल को अपनी पूरी देह पर घुमाता था। कंधे से सिर, सिर से घुटना या जंघा, जंघे से पैर, पैर से छाती, वह जहां चाहता, वहीं फुटबॉल ठहर जाती या कूदती रहती। सब कहने लगे थे, ये लड़का फुटबॉल का जिगरी यार है, तो कोई कहता, फुटबॉल इसके शरीर का ही एक अंग है।

उन दिनों उस बच्चे का एक अपेक्षाकृत सक्षम दोस्त था गोयो, जो एक क्लब अर्जेंटिनोस जूनियर्स से जुड़ा था। गोयो ने ही एक दिन अपने कोच फ्रांसिस कॉर्नेजो से कहा, 'सर, मेरा एक दोस्त है डिएगो माराडोना, जो मुझसे भी बेहतर है। क्या मैं उसे अगले हफ्ते ला सकता हूं?' कॉर्नेजो नए अच्छे खिलाड़ी की तलाश में थे। उन्होंने हामी भर दी। कुछ ही दिन बाद आठ वर्षीय डिएगो दो बार बस बदलते हुए अर्जेंटिनोस जूनियर्स के मैदान पर पहुंचे। उस दिन बारिश हो रही थी और एक छोटी जगह पर प्रशिक्षण मैच में डिएगो को खेलने का मौका मिला। कोच कॉर्नेजो फुटबॉल के साथ नए-नए करतब देख इतने अचंभित हुए कि उन्हें यकीन नहीं हुआ। उन्होंने उम्र का प्रमाण पत्र मांग लिया।

खैर, डिएगो माराडोना के खेल जीवन की शुरुआत हुई। हाफ टाइम के समय भी मैदान पर उनकी मांग होती थी और वह फुटबॉल लेकर किस्म-किस्म के करतब दिखाते थे। अर्जेंटिनोस जूनियर्स के लिए जब वह लगातार खेलने लगे, तब करीब पांच साल तक टीम को कभी हारने नहीं दिया। जो भी उन्हें खेलते हुए देखता, उसके पास तारीफ के लफ्ज कम पड़ने लगते।

माराडोना फुटबॉल के साथ शोहरत की सीढ़ियां चढ़ते चले गए। जिंदगी का सबसे सुनहरा दौर तब आया, जब 1986 में उन्होंने अपने देश अर्जेंटीना को फुटबॉल विश्व कप में विजेता बना दिया। पूरी दुनिया के खेलप्रेमी यह बात जानते हैं कि पेले और माराडोना, इस दुनिया के सबसे बड़े फुटबॉल खिलाड़ी हैं, इनमें भी माराडोना फुटबॉल के अकेले जादूगर हैं।

वह दुनिया के महंगे क्लबों के लिए खेले। अपने समय माराडोना (1960-2020) दुनिया के सबसे महंगे खिलाड़ी थे। उन्हें देखने के लिए भीड़ ऐसे उमड़ती थी कि संभालना मुश्किल हो जाता था। उनका गरीब परिवार झोंपड़ी से महलों तक पहुंचा। माराडोना ने कभी अपने परिवार का साथ नहीं छोड़ा और गरीबों की मदद करने में भी वह कभी पीछे नहीं रहे। उनका धन आज भी गरीबों के काम आ रहा है। आज भी उनकी उस कच्ची बस्ती में उनके नाम से गरीबों को भोजन कराया जाता है।

वह हमेशा कहते थे, 'लोग कामयाब होते हैं, सिर्फ मेहनत से, कामयाबी का किस्मत से कोई लेना-देना नहीं है।' जब उनसे पूछा जाता कि आपको सबसे ज्यादा खुशी कब मिलती है, तब वह कहते थे, 'जब मैं फुटबॉल को देखता हूं, उसके पीछे भागता हूं, तब मैं दुनिया का सबसे खुशदिल इंसान हो जाता हूं।'

प्रस्तुति : ज्ञानेश उपाध्याय

आत्म की तलाश में लेखक चला पहाड़

तिरछी नजर

सुधीश पचौरी हिंदी साहित्यकार

कोई अपने 'सेल्फ' को खोजने गंगोत्री जा रहा है, कोई अपने 'आत्म' को खोजने हिमालय जा रहा है, कोई अपना 'मानी' खोजने असम जा रहा है, तो कोई मेघालय जा रहा है। कोई निर्मल वर्मा को खोजने के लिए 'आइसलैंड' जा रहा है, तो कोई खबर दे रहा है कि वह ट्रेकिंग करने नेपाल जा रहा है। शायद वहीं उसको अपना खोया हुआ 'सेल्फ' मिले। कोई 'मान सरोवर' जा रहा है कि शायद वहीं कहीं उसे चैन मिले!

कहते हैं, दिल्ली की हवा खराब है। इसे देख मुझे हाथरस का रसिया याद आता है : *लखनऊ चलो अब रानी, दिल्ली का बिगड़ा पानी।* सेल्फ के खोने की बीमारी यूरोपीय थी, जो दूसरे विश्व-युद्ध के बाद बुद्धिजीवियों में बढ़ी थी, तभी उनको भी अपना सेल्फ खोया महसूस हुआ था, जिसे खोजते हुए वे अस्तित्ववादी बन गए। उनकी नकल में कुछ हिंदी वाले भी अस्तित्ववादी बन गए। अज्ञेय *अपने-अपने अजनबी* लिखते रहे, तो कमलेश्वर *खोया हुआ आदमी* लिखते रहे, जिसका बेरोजगार युवा नायक रीगल (कनॉट प्लेस) के पास के टी हाउस की रेलिंग पर खड़ा भीड़ भरी दिल्ली में खुद को खोया हुआ पाता है। यही युवा कालांतर में साठोत्तरी छाप लेखक बन जाता है और यही अब कह रहा है कि उसका आत्म खो गया है।

पहले पहाड़ से ही दिल्ली आया, अब फिर पहाड़ पर जा रहा है, जबकि इंस्टाग्राम ने 'ऐल्प्स' (पहाड़) को दिल्ली के हर घर में खड़ा कर दिया है। कई दुष्टबुद्धि लोगों की नजर में ऐसे लेखकों का सेल्फ खोजने के लिए हिमालय जाने का एक पाठ यह है- वे न आत्मा को खोजने जा रहे हैं, न परमात्मा को, वे सिर्फ दूसरों को चिढ़ा रहे हैं कि देखो बेट्टा! तुम कहां और अपन कहां? तुम मरो दिल्ली में, मैं चला हिमालय, जहां मिलेंगे मुझे 'नेटवर्क' बनाने के मौके।

आज के 'सोमीसा', यानी सोशल मीडिया साहित्यकार की सबसे बड़ी समस्या ही अपनी ओर ध्यान खींचने की है। जमाना ही ऐसा आ गया है। लेखक अपने लेखन से रोज तोप चलाए, एक से एक मठ और गढ़ तोड़े, तब भी उसे चैन नहीं! कारण? जो सब कर रहे हैं, वही तो वह भी कर रहा है... नया क्या कर रहा है? यहां कौन किसे पूछ रहा है? कौन किसको पढ़ रहा है और कौन किसे सीरियसली ले रहा है?

अब न कोई किसी की रचना पर दो मिनट बात करता है, न कोई कायदे की समीक्षा करता है, सब एक उड़ती सी नजर डालते हैं और 'लाइक' मारकर निपटा देते हैं। कुछ सेकंड के लिए लेखक मगन हो लेता है कि उसके इतने सौ या हजार 'व्यूअर्स' हैं। ये 'व्यूअर्स' हैं, टिककर पढ़ने वाले पाठक नहीं, जो किसी कमलेश्वर या मोहन राकेश या राजेंद्र यादव या धर्मवीर भारती की रचना पढ़कर अपने हाथ से पत्र लिखते थे और लेखक से हस्ताक्षर सहित जवाब भी पाते थे। अब वैसे पाठक और लेखक कहां?

बहरहाल, हिंदी लेखकों के पहाड़ पर जाने के इस नए ट्रेंड को देखकर कुछ चतुर सुजानों और बिल्डर्स ने पहले ही गेस्ट हाउस बना दिए हैं, जो कहते रहते हैं, लेखक जी! आप आइए और हमारे इस 'लग्जरी हट' में ध्यान-समाधि लगाइए और अपने खोए हुए आत्म को पाइए। आपकी सुविधा के लिए किचन भी है, बार भी है और कुछ 'एक्सट्रा सर्विसेज' भी हैं। आपको अपना आत्म मिलेगा और हमें हमारा 'सेल्फ' किराया मिलेगा। हालांकि, कभी-कभी इस देन-लेन में सेल्फ से सेल्फ लड़ जाते हैं और वैचारिक विश्व-युद्ध शुरू हो जाते हैं और जब सब एक-दूसरे पर गुर्रा-गुर्राकर बोर हो जाते हैं, तब फिर एक-दूसरे के मेरे हमदम मेरे दोस्त बन जाते हैं।

इनके मौज-मजे देखकर मैं भी सोच रहा था कि अपने सेल्फ के खोने का बहाना बनाकर पहाड़ की ओर निकल जाऊं, लेकिन जब से पहाड़ से धक्का देकर गिरा देने वाली खबरें आई हैं, तब से मेरा डरपोक सेल्फ लाख कोशिश करने पर भी पीछा नहीं छोड़ रहा। हाय मेरा सेल्फ, कोई करो मेरी हेल्प!

कटाक्ष

राजेंद्र धोड़पकर

निबंधकार, आलोचक, उपन्यासकार, नाटककार और कवि। हिंदी, अंग्रेजी, संस्कृत और बांग्ला भाषा के विद्वान। भक्तिकालीन साहित्य के विशेषज्ञ। शांति निकेतन में हिंदी अध्यापन। गुरुदेव रवींद्रनाथ ठाकुर तथा आचार्य क्षितिमोहन सेन के प्रभाव से साहित्य लेखन की ओर अग्रसर। 'बाणभट्ट की आत्मकथा', 'अशोक के फूल', 'कबीर', 'हिंदी साहित्य की भूमिका' और 'पुनर्नवा' आदि प्रमुख कृतियां। पद्म भूषण और निबंध-संग्रह 'आलोक पर्व' के लिए साहित्य अकादेमी पुरस्कार से सम्मानित लब्धप्रतिष्ठ साहित्यकार हजारी प्रसाद द्विवेदी (19 अगस्त 1907-19 मई 1979) के मनभावन ललित निबंध 'वर्षा : घनपति से घनश्यामग तक' से प्रस्तुत है संपादित अंश...

मन को भिगोने लगी मेघमाला

वर्षा ऋतु

■ हजारी प्रसाद द्विवेदी

बसंत के समान ही वर्षा भी भारतीय साहित्य में सम्मान और गौरव का स्थान पाती आ रही है। वैदिक ऋषियों ने मेघों के शक्तिशाली और औघड़दानी रूप का यशोगान उल्लसित कंठ से किया है। पर्जन्य देवता के वज्र निनाद, विद्युतलोक और धारासार वर्षा में शक्तिशाली महारथी का रूप स्पष्ट हो उठता है। इंद्र मेघों के अधिपति हैं, वे पर्जन्य देवता हैं। मेघ-निःस्वन में इस वज्रधर देवता का दर्शन पाकर वैदिक ऋषि गद्गद् हो उठता है।

कहते हैं, संसार की सभी जातियों की आदिम कृषि जीवी अवस्था में इसी प्रकार का एक सश्रद्ध भीत-भीत भाव मिल जाता है, इसीलिए यह भी कहा जाता है कि वैदिक ऋषि कुछ इसी प्रकार के भाव से चालित होकर अपनी स्तुति गाता है, परंतु बहुत पहले मैक्समूलर ने इस बात के एक विशिष्ट पक्ष की ओर ध्यान दिलाया था। वैदिक ऋषि प्राकृतिक व्यापारों के भीतर जिस महादेवता को देखता है, वह एक महान व्यापक परम सत्ता है, भिन्न-भिन्न छोटे-बड़े, परस्पर स्वतंत्र या अवलंबित बहुदेवता नहीं। आजकल मैक्समूलर की उस बात को याद रखने की आवश्यकता नहीं समझी जाती। जो हो, इसमें कोई संदेह नहीं कि वैदिक ऋषि मेघों के अधीश्वर इंद्र को पौरुष और औदार्य का पूर्ण रूप मानता है। उनके अधीनस्थ मेघों की कड़क, बिजली की तड़क और काली घटाओं में सूर्य जैसे महातेजस्वी को भी आच्छादित कर देने की महान सामर्थ्य श्रद्धा और भय दोनों को जाग्रत करते हैं।

दीर्घकाल तक इंद्र देवता अपने शक्तिशाली वज्र और विद्युत के कारण तथा औषधियों का सेवन करनेवाले महान गुण के कारण श्रद्धा और भक्ति पाते रहे हैं, परंतु भारतवर्ष की बहुधा विचित्र संस्कृति के इतिहास में एक दिन ऐसा भी आया, जब इंद्र देवता अपने शक्तिशाली मेघों के घोड़ों और बिजली के कोड़ों का प्रयोग करके भी जीत नहीं सके। जिस दिन उनका आतंक असफल हुआ, उसी दिन वे जनता की श्रद्धा भी खोने लगे। 'इंद्र' देवता के इस ह्रास के बाद 'उपेंद्र' देवता ने भारतवर्ष के धर्म, साहित्य, शिल्प, संगीत और कला के क्षेत्र को छा लिया। घनों के राजा रंगमंच से चुपचाप हट गए और घनश्याम वहां डट गए।

कृष्ण ने इंद्र की पूजा रोककर गोवर्धन की पूजा करवाई थी। ऐसे में इंद्र चुप कैसे बैठते। इंद्र ने मेघों को आज्ञा दी। मेघों ने प्रलयकांड मचा दिया। भयंकर गर्जना के साथ बारंबार उन्होंने विद्युत का प्रयोग किया। आंधी और बवंडर आए। धरती कलमला उठी। निरंतर मूसलाधार वर्षा से द्युलोक से भूलोक तक जल-ही-जल दिखाई देने लगा। गोप-गोपीगण त्राहि-त्राहि कर उठे। गायें कांप उठीं। हाहाकार मच गया, पर इंद्र देवता श्रीकृष्ण को नहीं जीत सके। एक ही उंगली पर श्रीकृष्ण ने गोवर्धन को धारण किया। मेघ बरसते रहे, बिजली कौंधती रही, जल धारा झरती रही।

> **वर्षा का सबसे सुंदर काव्यात्मक वर्णन आदिकवि (वाल्मीकि) ने किया है। सत्य तो यह है कि आदिकवि ने प्रकृति का जैसा वर्णन किया है, वैसा अन्य भारतीय कवि नहीं कर सके।**

इस प्रकार समूचा ब्रज कंपित हो उठा। मेघों के प्रचंड दल दिन और रात झकोर-झकोरकर बरसते रहे। आकाश और धरती का अंतर मिट गया। पेड़ पौधे भी त्राहि-त्राहि कर उठे। नंदबाबा घबरा गए। जसोदा मैया डर गई। गोप बालकों और गोपियों के हृदय में शंका और भीति के भाव घुमड़ आए, लेकिन एक ही बालक उसमें अचल बना रहा। क्रुद्ध देवराज के क्रुद्धतर सैनिक गरजते रह गए। अशनि पात से वायुमंडल फटता रह गया। प्रचंड वायु के वेग से धरित्री कलमला कर रह गई, पर पर्जन्य सेना के अधिपति इंद्र देवता का उद्देश्य सिद्ध नहीं हुआ। प्रलयपूर का दृश्य उपस्थित हो गया। नीचे से ऊपर तक बारिधारा की अखंडधार व्याप्त हो रही थी। समूचा ब्रजमंडल विपत्ति के पहाड़ के नीचे दब गया। निस्संदेह इंद्र देवता का पूर्ण प्रताप प्रकट हुआ। निस्संदेह ब्रजभूमि के निवासी त्राहि-त्राहि कर उठे।

सब हुआ, पर इंद्र देवता नंदलाल के चेहरे पर चिंता की हल्की-सी भी रेखा नहीं प्रकट करा सके। उस सदाप्रसन्न, सदासरस गोपाललाल के अधरों की मुस्कान नहीं हटा सके। आंधी पेड़ को उखाड़ सकती है, पहाड़ का वह क्या बिगाड़ लेगी।...

वर्षा का सबसे सुंदर काव्यात्मक वर्णन आदिकवि (वाल्मीकि) ने किया है। सत्य तो यह है कि आदिकवि ने प्रकृति का जैसा वर्णन किया है, वैसा अन्य भारतीय कवि नहीं कर सके। वह प्रकृति का सजीव तथा यथार्थ चित्रण है। वैदिक ऋषि के समान वाल्मीकि ने भी वर्षा में लोक-कल्याण रूप को देखा है, परंतु उन्होंने प्राकृतिक दृश्यों का ऐसा मनोरम चित्र खींचा है कि अनायास वह दृश्य अपनी शोभा और गरिमा के साथ प्रत्यक्ष हो उठता है। नीचे से ऊपर तक एक पर एक सोपान श्रेणी की भांति लजी हुई मेघमाल को देखकर आदिकवि ने कहा है कि मेघमाल की सीढ़ियों के सहारे आसमान पर चढ़कर कुटज और अर्जुन की माला से सूर्य का अभिनंदन किया जा सकता है। ठंडी हवा के लिए वाल्मीकि का यह कहना उसे कितना सहजग्राह्य और प्रत्यक्ष बना देता है कि मेघ के पेट से निकली हुई, कमल कचनार के स्पर्श से शीतल बनी हुई और केतकी पुष्पों की सुगंधि से आमोदित वायु अंजुलि से पी जा सकती है।

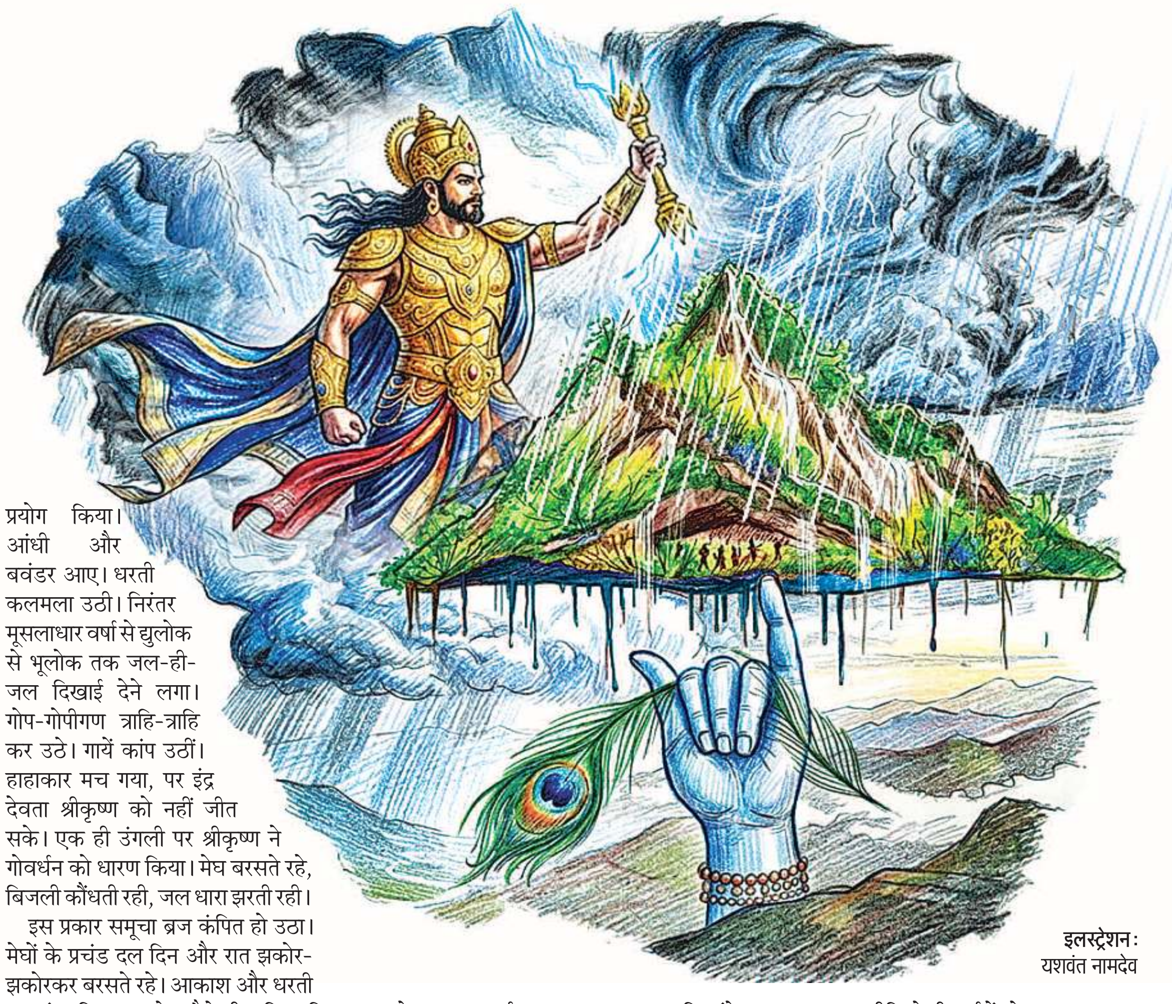

इलस्ट्रेशन : यशवंत नामदेव

इस वर्षा काल का वर्णन आदिकवि ने विरही राम के मुख से कराया है, इसलिए कभी-कभी राम के विरह-व्याकुल चित्त की प्रतिध्वनि के रूप में मेघ में कामार्त पुरुष और वाष्पवती विरहिणी की चर्चा अवश्य आ जाती है। नहीं तो समूचा वर्षा काल अपने अनासक्त दृष्ट यथार्थ और गौरव गांभीर्य के साथ ही चित्रित हुआ है।

आदिकवि ने मेघों को कई बार मत्त गजराज के समान कहा है और एक जगह तो बिजली की पताकाओं से शोभित घोर चिंघाड़ के समान गर्जन करनेवाले ये मेघ युद्धोद्यत मत्त गजराजों के समान बताए गए हैं।

कालिदास ने 'मेघदूत' में मेघ को इंद्र देवता व प्रकृति-पुरुष या प्राजवर्ग से संपर्क स्थापित करानेवाला 'राजपुरुष' कहा है। वहां मेघ गंभीर विश्वासपरायण मित्र के रूप में आया है। उसमें सहानुभूति है, समझ है, हितकांक्षा है। शायद किसी स्थान पर 'मेघदूत' में फूलों के बाण धारण करनेवाले देवता का उल्लेख नहीं है। एक जगह है भी, तो मल्लिनाथ ने उस श्लोक को प्रक्षिप्त मान लिया है। यह कुछ विचित्र बात है। कालिदास ने 'मेघदूत' में महादेव की महिमा का ही बार-बार गान किया है। समूचे काव्य में इस महिमा की गुरुगंभीर ध्वनि व्याप्त है।

ऐसा नहीं है कि कालिदास को फूलों के बाणवाले देवता का पता न हो, पर 'मेघदूत' की श्रृंगारमयी कविता में इस अपदेवता को उन्होंने प्रयत्नपूर्वक अलग रखा है। 'ऋतुसंहार' में वे इतने सावधान नहीं हैं। 'मेघदूत' में मेघ के सजीव दैवत रूप का ही प्राधान्य है। वहां देवताओं के राजा को बहुत आदर के साथ स्मरण किया गया है। 'कुमारसंभव' में भी देवराज की महिमा के प्रति कवि असावधान नहीं है, पर 'ऋतुसंहार' में कामदेव अधिक मुखर हैं। यहां वर्षाकाल का उन्होंने बहुत ही मनोहर चित्रण किया है। मेघ वहां कामीजनों के चित्त में कुतूहल और औत्सुक्य के भाव जगा देते हैं। मानिनीजन के मन में क्षोभ उत्पन्न करते हैं। पथिकजन बंधुओं का चित्त अपहरण करता है और स्वभाव मृदुल सुंदरियों में और भी सौंदर्य दीप्ति से उद्भासित होने की आकांक्षा उत्पन्न करता है।

(साभार : 'हिंदी समय', महात्मा गांधी अंतरराष्ट्रीय हिंदी विश्वविद्यालय, वर्धा)

पुस्तकें आई हैं

इक इक बूंद समुंदर
(गजल-संग्रह)

लेखक : मुरली धर 'तालिब'
प्रकाशक : मंजुल पब्लिशिंग हाउस, भोपाल
मूल्य : ₹299

'**बदनाम** कर दिया मुझे उसने यकीं करो/जिससे कि आज तक मेरा मिलना नहीं हुआ।' भले ही ऊपर कहा गया शेर कमोबेश ताजा है, लेकिन जमाने की यह रवायत सदियों पुरानी है। बदनामी के दाग लगाने में दोस्त और दुश्मन की बात तो छोड़िए, अजनबी भी पीछे नहीं रहते। जिंदगी की कुछ ऐसी ही कड़वी सच्चाइयों को शब्दों में ढाला है गजल-संग्रह 'इक इक बूंद समुंदर' की गजलों ने। इस संग्रह की गजलों में सिर्फ कड़वी सच्चाइयां ही नहीं है, प्रेम भी है। वैसे भी गजल और शेरो-शायरी प्रेम के बिना अधूरी है। प्रेम भले ही अधूरा रह जाए, लेकिन गजल उसी अधूरे प्रेम से मुकम्मल होती है- 'तुझसे अलग रहा कभी ऐसा नहीं हुआ/तन्हा मैं हो के भी कभी तन्हा नहीं हुआ।

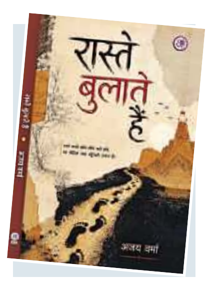

रास्ते बुलाते हैं
(यात्रा वृत्तांत)

लेखक : अजय वर्मा
प्रकाशक : अद्विक पब्लिकेशन, दिल्ली
मूल्य : ₹300

यात्राएं सिर्फ मनोरंजन का ही साधन नहीं होतीं, वे ज्ञान अर्जन का माध्यम भी होती हैं। साथ ही अपने अतीत से रूबरू होने का अवसर भी होती हैं। यात्राओं के इसी लुभावने रास्तों पर लेकर चलती है पुस्तक 'रास्ते बुलाते हैं।' इसमें उत्तर प्रदेश के पश्चिमी भू-भाग यानी बिजनौर, चंदौसी, मुरादाबाद तथा पूर्वी उत्तर प्रदेश के प्रमुख दर्शनीय स्थलों- वाराणसी, प्रयागराज, विंध्याचल के प्रसिद्ध स्थानों का मनोहारी वर्णन है। इसके साथ ही इसमें लखनऊ के प्रसिद्ध चिड़ियाघर के जीव-जंतुओं तथा राज्य संग्रहालय का वर्णन भी बहुत बारीकी से किया गया है। उल्लेखनीय है कि यह यात्रा-वृत्तांत, इसमें वर्णित शहरों को जानने और देखने की उत्सुकता भी पैदा करता है।

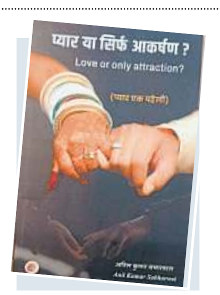

प्यार या सिर्फ आकर्षण?
(नाटक)

लेखक : अनिल कुमार सभारवाल
प्रकाशक : बी एफ सी पब्लिकेशन, लखनऊ
मूल्य : ₹179

प्यार करने की कोई उम्र नहीं होती। बावजूद इसके, कहा जाता है कि यह भी कोई उम्र है प्यार करने की। इस प्यार ने बड़े-बड़ों को भरमाया है। कभी किसी का प्यार भरा संकेत भी प्यार नहीं होता, तो कभी बिना किसी संकेत के भी प्यार हो जाता है। किसी को यह पहली नजर का प्यार लगता है, तो किसी के लिए प्यार अंधा होता है। बहरहाल, प्यार की इस अबूझ पहेली को जानने-समझने की कोशिश का नाम है- 'प्यार या सिर्फ आकर्षण।' नाटक के कलेवर में यह पुस्तक अपने सब टाइटल 'प्यार एक पहेली' के साथ है। यह कहानी उन युवाओं के इर्द-गिर्द घूमती है, जो एक छोटे से गांव से दिल्ली जैसे शहर में अपना करियर बनाने के लिए आते हैं। यहां जिंदगी की जद्दोजहद में उनका सामना प्यार और आकर्षण जैसी पहेली से होता है।

अंग्रेजों से विरोध के प्रतीक तिलक

महात्मा गांधी के आने से पहले भारत में आजादी की लौ जलानेवाले बाल गंगाधर तिलक थे। लंदन के मशहूर अखबार 'द टाइम्स' ने उन्हें 'भारतीय अशांति का जनक' कहा था। उन्होंने आजादी की लड़ाई को सिर्फ पढ़े-लिखे की बात से निकालकर आम लोगों का आंदोलन बना दिया। तिलक के जन्म दिन 23 जुलाई के अवसर पर उनके जीवन पर समग्रता से प्रकाश डालती पुस्तक 'तिलक : साम्राज्य का सबसे बड़ा शत्रु' से एक अंश...

पुस्तक अंश

बंगाल में बाल गंगाधर तिलक एक लोकप्रिय नेता बन गए थे। उन्होंने लॉर्ड कर्जन की कड़ी आलोचना की। उन्होंने पूरे देश में बंगाल की शिकायतों को उठाया। कर्जन के जाने के बाद ब्रिटेन में लिबरल पार्टी जीती, पर बंगाल के बंटवारे से हालात और खराब हो गए।

भारत के नए वायसराय लॉर्ड मिंटो ने कोई राहत नहीं दी। उदारवादी लॉर्ड मॉर्ले भी निराश करने वाले साबित हुए। बंगाल और बाकी भारत की इच्छा के खिलाफ, मॉर्ले ने कहा कि विभाजन एक तयशुदा बात है। जमीनी स्तर पर स्थिति बहुत बिगड़ गई थी। पूर्वी बंगाल में लेफ्टिनेंट गवर्नर बंपफील्ड फुलर ने हिंदू विरोधी आतंक शुरू किया।

अंग्रेजों ने विभाजन से पहले बंगालियों से सलाह नहीं ली थी। वे केवल पूर्वी बंगाल के कट्टरपंथी मुसलमानों की बात सुन रहे थे, जो बंटवारे से फायदा चाहते थे। फुलर ने कहा, 'हिंदू और मुस्लिम मेरी दो रानियों की तरह हैं, एक पसंदीदा और दूसरी उपेक्षित।' उसने देशभक्ति गीत 'वंदे मातरम' पर रोक लगा दी। उसने पुलिस को अपराधियों के खिलाफ कार्रवाई की खुली छूट दे दी। एक घर सिर्फ इसलिए गिरा दिया गया, क्योंकि उस पर 'वंदे मातरम' लिखा था। एक स्कूली बच्चे को गीत गाने के लिए कोड़े मारे गए। पुलिसकर्मी सड़कों पर लोगों को बेल्ट से पीटते थे।

तिलक ने फुलर को पागल कुत्ता कहा। उन्होंने बंगालियों के विरोध की तारीफ की। उन्होंने कहा कि फुलर बौखला गया है, क्योंकि उसे पता है कि स्वदेशी और बहिष्कार आंदोलन जनता को जीत दिलाएंगे। तिलक ने बंगाल को स्वतंत्रता संग्राम में सबसे आगे बताया, 'भारत के राजनीतिक संघर्ष में पहला वार झेलना बंगाल का भाग्य है।'

अप्रैल 1906 में बरिसाल सम्मेलन पर पुलिस का हमला क्रूर था। सुरेंद्रनाथ बनर्जी को गिरफ्तार किया गया। प्रतिनिधियों पर लाठियां बरसाई गईं। एक प्रतिनिधि को तालाब में फेंक दिया गया। गोरखा सैनिकों ने शहर को लूट लिया। बनर्जी के साहस की तारीफ करते हुए, तिलक ने कहा कि इस दर्द के पीछे शायद कोई दैवी कारण है। उन्होंने घोषणा की, 'यही संघर्ष हमारी प्रगति का एकमात्र रास्ता है।' उन्होंने यह भी कहा कि उपनिवेशवादी स्वेच्छा से आजादी नहीं देते, 'बिना कठिनाई के आजादी नहीं मिलती, जैसे रात के बिना दिन नहीं होता।'

तिलक के कहने पर, उनके शिष्य सखाराम गणेश देउस्कर ने 1902 में बंगाल में शिवाजी उत्सव की शुरुआत की। इसी उत्सव का उद्घाटन करने के लिए मई 1906 में बाल गंगाधर तिलक को बंगाल बुलाया गया था। देउस्कर (जो जन्म से महाराष्ट्र के थे, पर बंगाल में ही बस गए थे) ने वहां अपनी गहरी छाप छोड़ी।

रवींद्रनाथ टैगोर समेत कई बड़े लोगों को उन्होंने प्रभावित किया। उनका परिवार बंगाल कब आया, यह ठीक से पता नहीं, लेकिन देउस्कर के पिता देवघर के पास बस गए थे और सखाराम का जन्म दिसंबर 1869 में वहीं हुआ था। बचपन में ही उन्होंने मराठा इतिहास और भारतीय संस्कृति की जानकारी हासिल कर ली थी। जब वे युवावस्था में कलकत्ता आए, तो साम्राज्यवाद पर सवाल उठाने वाले एक मशहूर लेखक बन गए। भारती पत्रिका में देउस्कर ने 'ऐतिहासिक पत्रावली' नाम से कुछ चिट्ठियों का संग्रह छापा। इसने टैगोर का ध्यान खींचा और टैगोर ने शिवाजी की नीतियों की खूब तारीफ की। उन्होंने साहित्य पत्रिका में रानड़े पर देउस्कर के निबंधों को भी सराहा। बंगाल में शिवाजी उत्सव शुरू करने के बाद, देउस्कर ने शिवाजी महात्म्य (शिवाजी की महानता), 1905 में शिवाजीर दीक्षा (शिवाजी की दीक्षा) नाम की किताबें भी लिखीं।

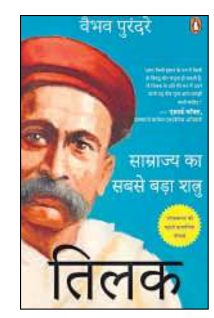

तिलक : साम्राज्य का सबसे बड़ा शत्रु
(इतिहास अध्ययन)

लेखक : वैभव पुरंदरे
अनुवाद : स्मिता सिन्हा
प्रकाशक : पेंगुइन स्वदेश, गुरुग्राम
मूल्य : ₹599

रोजनामचा

साप्ताहिक भविष्यफल
(12 जुलाई से 18 जुलाई 2026)

पं. राघवेन्द्र शर्मा
ज्योतिषाचार्य

मेष (21 मार्च-20 अप्रैल)
मन में उतार-चढ़ाव हो सकते हैं। पिता की सेहत का ध्यान रखें। परिवार का साथ मिलेगा। परिवार में धार्मिक कार्य हो सकते हैं। खर्चों में वृद्धि होगी। किसी मित्र के सहयोग से कारोबार में वृद्धि होगी।

वृष (21 अप्रैल-20 मई)
सप्ताह के प्रारंभ में मन प्रसन्न रहेगा। दांपत्य सुख में वृद्धि होगी। कारोबार में विस्तार होगा। यात्रा भी बढ़ सकती है। माता-पिता से धन मिल सकता है। कारोबार में भागदौड़ अधिक रहेगी।

मिथुन (21 मई-21 जून)
आत्मसंयत रहें। अपनी भावनाओं को वश में रखें। परिवार के साथ किसी धार्मिक स्थान की यात्रा पर जाना हो सकता है। भागदौड़ अधिक रहेगी। सेहत का ध्यान रखें। पिता से धन मिल सकता है।

कर्क (22 जून-23 जुलाई)
मन प्रसन्न रहेगा। शैक्षिक कार्यों में सफलता मिलेगी। किसी नए कारोबार में निवेश कर सकते हैं। माता-पिता से धन की प्राप्ति हो सकती है। कारोबार के लिए भागदौड़ अधिक रहेगी।

सिंह (24 जुलाई-22 अगस्त)
संयत रहें। धैर्यशीलता बनाए रखें। कारोबार में वृद्धि होगी। लाभ के अवसर मिलेंगे। संपत्ति में वृद्धि होगी। घर-परिवार में धार्मिक-मांगलिक कार्य हो सकते हैं। जीवनसाथी की सेहत का ध्यान रखें।

कन्या (23 अगस्त-22 सितंबर)
आत्मविश्वास तो बहुत रहेगा, परंतु नकारात्मक विचारों से बचें। कारोबार में वृद्धि तो होगी, परंतु कुछ कठिनाइयां भी आ सकती हैं। किसी मित्र का सहयोग भी मिल सकता है।

तुला (23 सितंबर-23 अक्तूबर)
मन परेशान हो सकता है। परिवार की सेहत के प्रति सचेत रहें। भागदौड़ अधिक रहेगी। रहन-सहन अव्यवस्थित रहेगा। किसी मित्र के सहयोग से किसी नए कारोबार की शुरुआत हो सकती है।

वृश्चिक (24 अक्तूबर-21 नवंबर)
आत्मविश्वास भरपूर रहेगा, परंतु मन प्रसन्न रहेगा। शैक्षिक व शोधादि कार्यों में सफलता मिलेगी। 17 जुलाई के बाद नौकरी में तरक्की के अवसर मिलेंगे। शासन सत्ता का सहयोग मिलेगा।

धनु (22 नवंबर-21 दिसंबर)
संयत रहें। धैर्यशीलता बनाए रखने का प्रयास करें। शैक्षिक कार्यों में व्यवधान आ सकते हैं। सचेत रहें। घर-परिवार में धार्मिक कार्य हो सकते हैं। भागदौड़ अधिक रहेगी। खर्चों में वृद्धि होगी।

मकर (22 दिसंबर-19 जनवरी)
मन में उतार-चढ़ाव हो सकते हैं। बौद्धिक कार्यों में व्यस्तता बढ़ सकती है। आय में वृद्धि भी होगी। शैक्षिक कार्यों में कठिनाई आ सकती है। सचेत रहें। कारोबार में बदलाव के योग बन रहे हैं।

कुंभ (20 जनवरी-18 फरवरी)
धैर्यशीलता बनाए रखें। मन परेशान भी रहेगा। नौकरी में तरक्की के अवसर मिल सकते हैं। अफसरों का सहयोग मिलेगा। कार्यक्षेत्र में वृद्धि होगी। पारिवारिक जीवन सुखमय रहेगा।

मीन (19 फरवरी-20 मार्च)
मन अशांत रहेगा। आत्मविश्वास भरपूर रहेगा। शैक्षिक व बौद्धिक कार्यों से मान-सम्मान की प्राप्ति हो सकती है। शैक्षिक कार्यों में सफलता मिलेगी। रहन-सहन अव्यवस्थित रहेगा।

स्कैन करें
भविष्यफल और व्रत-त्योहार जानने के लिए

व्रत और त्योहार | पंचांग | पं. ऋभुकांत गोस्वामी

12 जुलाई, रविवार, **शक संवत्** : 21 आषाढ़ (सौर) 1948, **पंजाब पंचांग** : 28 आषाढ़ मास प्रविष्टे 2083, **इस्लाम** : 26 मोहर्रम, 1448, **विक्रमी संवत्** : आषाढ़ कृष्ण त्रयोदशी रात्रि 10.31 मिनट तक। मृगशीर्ष नक्षत्र, वृद्धि योग रात्रि 08.06 मिनट तक पश्चात ध्रुव योग, गर करण। चंद्रमा वृष राशि में सायं 07.07 मिनट तक उपरांत मिथुन राशि में।

सूर्य उत्तरायण। सूर्य उत्तर गोल। ग्रीष्म ऋतु। सायं 04.30 मिनट से सायं 06 बजे तक राहुकालम्। भद्रा रात्रि 10.31 मिनट से। प्रदोष व्रत। मास शिवरात्रि व्रत।

वास्तु सलाह | आचार्य मुकुल रस्तोगी

अपनी आदतों से जानें दिशा संबंधी वास्तु दोष :

■ जिन्हें लगातार अपने भाग्य को कोसने की आदत होती है, उनके ईशान कोण में दोष होता है। जिन्हें दूसरों के बारे में बुरा सोचने की आदत होती है, उनके नैऋत्य कोण में दोष होता है। जो किसी के प्रति गलत विचार रखते हैं, उनके अग्नि कोण में दोष होता है। जो लोग अपने काम को टालते बहुत हैं, उनकी पश्चिम दिशा में दोष होता है। जो बात-बात पर दूसरों से संबंध खराब करते हैं, उनकी दक्षिण दिशा में दोष होता है। जो आने वाले कल की ज्यादा चिंता करते हैं, उनके वायव्य कोण में दोष होता है। जिनके जीवन का कोई उद्देश्य नहीं होता, उनकी पूर्व दिशा में दोष होता है। जो केवल सोचते ही हैं, पर करते कुछ नहीं, उनके ईशान कोण में दोष होता है।

वर्ग पहेली : 8387

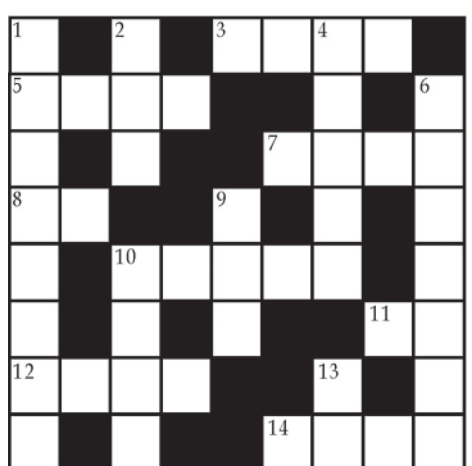

बाएं से दाएं
3. जिससे लाभ मिले; फायदा करने वाला; गुणकारी; लाभदायक (4)
5. चौकीदार; पहरेदार; रक्षक; संकटमोचक (4)
7. जोड़ने वाला; मिलाने वाला; संयोजन करने वाला; किसी सभा या समिति का कार्य निष्पादन करने वाला व्यक्ति (4)
8. चैत में पकने वाली फसल; बसंत ऋतु में काटी जाने वाली फसल; बसंत ऋतु; बहार का मौसम (2)
10. किसी काम में हाथ बंटाने का भाव; सहकर्म; साझेदारी; हिस्सेदारी (5)
11. कोण; पतला सिरा; पैना किनारा; शिखर; कोना (2)
12. रास्ते में लूटने वाला; डाकू (4)
14. जान लेने पर तुला हुआ; जानी दुश्मन; प्राणांतक शत्रु; मारक (4)
15. अस्वाभाविक; दिखाऊ; पाखंडपूर्ण; नकली; बनाया हुआ; मानव रचित (4)

ऊपर से नीचे
1. किसी के आस-पास घूमते रहना; किसी के चारों ओर घूमना (2,2,4)
2. बातचीत; कथा; प्रसंग; समाचार; वार्तालाप (3)
4. प्रतिद्वंद्विता; प्रतिस्पर्धा; मुकाबला; होड़; शत्रुता (5)
6. अनुसंधान करवाना; हिसाब लगवाना; संभावित व्यय का पहले से ही अनुमान लगवाना (4,4)
9. किसी कार्यालय का एक भाग; महकमा; अंश; खंड; क्षेत्र; स्कंध; अध्याय (3)
10. आसान होना; सरल होना; सुगम होना; स्वाभाविक होना (3,2)
13. अभिज्ञ होना; अवगत होना; जानकारी होना; परिचित होना; अनुभव करना (3)

हरीश चन्द्र सन्सी, विविधा विधा, दिल्ली
(उत्तर अगले अंक में)

वर्ग पहेली 8386 का उत्तर

	1मि		2का		3अ	4सं	ग	5त
6ब	ल	दा	य	7क		दे		प
	ना		8र	ह	र	ह	क	र
9स		10है		ना		क		र
11म	ल	म	ल		12प	र	वा	ह
य		ला		13आ		ना		ना
14क	म	क	र	वा	15ना		16अ	
ट		र		17रा	ह	दि	खा	ना
18ना	ग	ना	सा		क		ड़ा	

सुडोकू : 8341
*आसान

			6		4			
		3	1	5				7
1	6				8	9		
	3	9			1			
	8						5	
			2			6	3	
		5	3				8	1
3				4	9	7		
			8		6			

खेलने का तरीका : दिमागी खेल और नंबरों की पहेली है यह। तर्क से इसे हल कर सकते हैं। ऊपर नौ-नौ खानों के नौ खाने दिए गए हैं। आपको 1 से 9 की संख्याएं इस तरह लिखनी हैं कि खड़ी और पड़ी लाइनों के हरेक खाने में 1 से 9 की सभी संख्याएं आएं। साथ ही 3×3 के हरेक बक्से में भी 1 से 9 तक की संख्याएं हों। पहेली का हल हम कल देंगे।

हल : सुडोकू नं. 8340

2	5	1	3	4	8	6	9	7
4	3	8	7	6	9	2	5	1
7	6	9	5	1	2	4	3	8
5	4	3	1	8	6	7	2	9
8	1	2	4	9	7	3	6	5
6	9	7	2	5	3	8	1	4
1	7	4	6	2	5	9	8	3
9	2	5	8	3	4	1	7	6
3	8	6	9	7	1	5	4	2

हर वर्ष 15 जुलाई को विश्व युवा कौशल दिवस मनाया जाता है। यह दिवस युवाओं की ऊर्जा, प्रतिभा और संभावनाओं को दिशा देने का वैश्विक संकल्प दिवस भी है। विश्व युवा कौशल दिवस हमें यह संदेश देता है कि किसी भी राष्ट्र का भविष्य उसके युवाओं के हाथों में होता है और उन हाथों की सबसे बड़ी शक्ति उनका कौशल ही है। आज आवश्यकता इस बात की है कि प्रत्येक युवा इसके महत्व को समझे और देश निर्माण में अपनी भूमिका को निभाए।

स्किल्ड युवाओं से संवरेगा देश-समाज का भविष्य

कवर स्टोरी / डॉ. यशोधरा भटनागर

आज जब दुनिया तीव्र तकनीकी परिवर्तन, कृत्रिम बुद्धिमत्ता (एआई), स्वचालन, ग्रीन इकोनॉमी और डिजिटल क्रांति के दौर से गुजर रही है, तब कौशल विकास यानी स्किल डेवलपमेंट केवल रोजगार का प्रश्न नहीं रह गया है। यह सामाजिक न्याय, आर्थिक समृद्धि, आत्मनिर्भरता और सतत विकास का आधार बन चुका है। इसमें संदेह नहीं किसी भी राष्ट्र की सबसे बड़ी पूंजी उसके प्राकृतिक संसाधन नहीं, बल्कि उसके कुशल नागरिक होते हैं। भारत जैसे युवा देश के लिए यह तथ्य और भी महत्त्वपूर्ण है। हमारे पास विश्व की सबसे बड़ी युवा आबादी है। यदि यह युवा वर्ग उचित शिक्षा, प्रशिक्षण और कौशल से सुसज्जित हो जाए, तो अपना देश भारत केवल जनसंख्या के आधार पर ही नहीं, बल्कि ज्ञान, नवाचार और उत्पादकता के आधार पर भी संपूर्ण विश्व का नेतृत्व कर सकता है।

विश्व युवा कौशल दिवस की पृष्ठभूमि

संयुक्त राष्ट्र महासभा ने वर्ष 2014 में 15 जुलाई को विश्व युवा कौशल दिवस के रूप में घोषित किया। इसका उद्देश्य युवाओं, तकनीकी और व्यावसायिक शिक्षा संस्थानों, उद्योगों और नीति-निर्माताओं के बीच ऐसा संवाद स्थापित करना था, जिससे युवाओं को बदलती दुनिया की आवश्यकताओं के अनुरूप कौशल प्राप्त हो सके। इस दिवस का मूल स्पष्ट संदेश है कि युवाओं को केवल शिक्षित करना पर्याप्त नहीं, उन्हें दक्ष, सक्षम और आत्मनिर्भर बनाना भी उतना ही आवश्यक है।

कौशल का व्यापक अर्थ

कौशल यानी स्किल का अर्थ केवल किसी मशीन को चलाना या किसी तकनीक में दक्ष होना नहीं है। कौशल एक समग्र अवधारणा है, जिसमें ज्ञान, व्यवहार, दृष्टिकोण और कार्यकुशलता का संतुलित समावेश होता है। आज कौशल के अनेक आयाम उपलब्ध हैं। तकनीकी एवं व्यावसायिक कौशल, डिजिटल और आईटी कौशल, संचार एवं अभिव्यक्ति कौशल, नेतृत्व एवं प्रबंधन क्षमता, समस्या-समाधान और आलोचनात्मक चिंतन, उद्यमिता एवं वित्तीय साक्षरता, रचनात्मकता और नवाचार, भावनात्मक बुद्धिमत्ता तथा टीमवर्क। इन मानवीय गुणों के कौशल से यह बात पूरी तरह स्पष्ट हो जाती है कि कौशल केवल हाथों की दक्षता नहीं, बल्कि मस्तिष्क, व्यक्तित्व और मानवीय मूल्यों का समन्वय होता है।

बदलती दुनिया में नई चुनौतियां

इक्कीसवीं सदी का रोजगार बाजार निरंतर बदल रहा है। अनेक पारंपरिक कार्य एआई और ऑटोमेशन के कारण परिवर्तित हो रहे हैं। ऐसे समय में केवल एक बार सीखा गया ज्ञान जीवन भर पर्याप्त नहीं रह सकता। आज आवश्यकता है निरंतर सीखने की। डिजिटल तकनीक, डेटा विश्लेषण, साइबर सुरक्षा, नवीकरणीय ऊर्जा, रोबोटिक्स, स्वास्थ्य सेवाएं, कृषि-प्रौद्योगिकी और रचनात्मक उद्योग जैसे क्षेत्रों में नए अवसर लगातार विकसित हो रहे हैं। इन अवसरों का लाभ वही युवा उठा पाएगा, जो स्वयं को समय के अनुसार निरंतर अद्यतन करता रहेगा।

कौशल और आत्मनिर्भरता

कौशल व्यक्ति को आत्मनिर्भर बनाता है। वह केवल नौकरी पाने की प्रतीक्षा नहीं करता, बल्कि अपने लिए नए अवसरों का निर्माण करता है। यही कारण है कि आज स्टार्टअप कल्चर, सामाजिक उद्यमिता और इनोवेशन को विशेष महत्त्व दिया जा रहा है। एक कुशल कारीगर, किसान, डिजाइनर, प्रोग्रामर, शिक्षक या तकनीशियन सभी राष्ट्रनिर्माण में समान रूप से योगदान देते हैं। किसी भी कार्य का सम्मान उसकी उपयोगिता से निर्धारित होता है, न कि उसके सामाजिक वर्गीकरण से। कौशल सम्मानजनक श्रम की संस्कृति को भी सुदृढ़ करता है।

जीवन कौशल का महत्व

तकनीकी दक्षता के साथ-साथ जीवन कौशल भी अत्यंत आवश्यक हैं। प्रभावी संवाद, समय-प्रबंधन, सहयोग, सहानुभूति, नेतृत्व, नैतिकता और तनाव-प्रबंधन ऐसे गुण हैं, जो किसी भी व्यक्ति को सफल ही नहीं, बल्कि संतुलित और जिम्मेदार नागरिक भी बनाते हैं। आज के युवा को केवल तकनीकी रूप से सक्षम नहीं, बल्कि सामाजिक रूप से संवेदनशील भी होना होगा। तकनीक का उपयोग तभी सार्थक है जब वह मानवता के हित में हो।

सभी वर्गों का हो कौशल विकास

विश्व युवा कौशल दिवस हमें यह भी स्मरण कराता है कि कौशल विकास का लाभ समाज के प्रत्येक वर्ग तक पहुंचना चाहिए। ग्रामीण युवाओं, महिलाओं, दिव्यांगजनों और आर्थिक रूप से कमजोर वर्गों को समान अवसर उपलब्ध कराना समावेशी विकास की अनिवार्य शर्त है। किसी राष्ट्र का भविष्य केवल उसके सपनों से नहीं, बल्कि उन सपनों को साकार करने वाले कुशल हाथों से निर्मित होता है। कौशल वह दीप है जो आत्मविश्वास को प्रकाशित करता है, श्रम को सम्मान देता है और संभावनाओं को उपलब्धियों में बदल देता है। आज आवश्यकता ऐसी पीढ़ी तैयार करने की है जो ज्ञानवान होने के साथ-साथ कर्मनिष्ठ, सृजनशील और उत्तरदायी भी हो। *

भविष्य के कौशल में रोजगार ही नहीं उत्तरदायित्व भी शामिल करना होगा

भविष्य के कौशलों में तकनीकी दक्षता के साथ पर्यावरणीय चेतना, सामाजिक उत्तरदायित्व और नैतिक नेतृत्व भी सम्मिलित होंगे। जलवायु परिवर्तन, सतत विकास और ग्रीन इकोनॉमी की चुनौतियां ऐसे युवाओं की मांग करती हैं, जो इनोवेशन के साथ संवेदनशीलता भी रखते हों। वास्तविक कौशल वही है, जो व्यक्ति को सफल होने के साथ-साथ उपयोगी और उत्तरदायी भी बनाए। श्रम के सम्मान और उत्कृष्टता की साधना को अपना जीवन मंत्र बनाए। जब युवा अपने कौशल से आत्मविश्वास अर्जित करेंगे, तब वे केवल अपने जीवन को नहीं, बल्कि समाज और राष्ट्र की दिशा भी बदलेंगे। विकसित भारत का स्वप्न केवल योजनाओं से नहीं, बल्कि करोड़ों कुशल, सृजनशील, संवेदनशील और आत्मनिर्भर युवाओं के हाथों से साकार होगा।
निश्चय ही कुशल युवाओं के हाथों में ही वह शक्ति निहित है, जो विकसित, समृद्ध, समावेशी और मानवीय भारत के स्वप्न को यथार्थ में बदल सकती है। यही विश्व युवा कौशल दिवस का सार है और यही हमारे समय का सबसे बड़ा राष्ट्रीय संकल्प भी।

काम करने की दौड़-भाग में पीछे छूट ना जाए जिंदगी !

पैसा कमाने के लिए, जीवन में प्रगति, पद, प्रतिष्ठा के लिए काम करना तो जरूरी है। लेकिन कुछ लोगों को काम करने की लत लग जाती है। इसकी धुन में वे जिंदगी जीना ही जैसे भूल जाते हैं। इससे बचना क्यों जरूरी है, इससे कैसे बचें, आपको जरूर जानना चाहिए।

लाइफस्टाइल / वीरेंद्र बहादुर सिंह

आज की दुनिया में काम सिर्फ जरूरत नहीं, पहचान भी बन चुका है। जिस व्यक्ति के पास काम है, उसे सफल माना जाता है। सुबह से रात तक भागते लोग, मोबाइल पर झुकी आंखें, लैपटॉप पर टिके हाथ और दिमाग में लगातार घूमती डेडलाइन, यह सब आधुनिक जीवनशैली का सामान्य दृश्य बन गया है। लेकिन कई बार हमारे भीतर यह सवाल भी उठने लगता है कि क्या हम काम कर रहे हैं, या काम हमें नियंत्रित कर रहा है?

मेहनती और वर्कोहोलिक में फर्क: मन लगाकर काम करने वाला व्यक्ति मेहनती कहलाता है। लेकिन मेहनती इंसान काम के साथ आराम करता है, परिवार के साथ समय बिताता है और अपने मन को विराम भी देता है। लेकिन वर्कोहोलिक व्यक्ति के लिए काम छोड़ना आसान नहीं होता। वह खाली बैठते ही बेचैन हो जाता है। उसे लगता है कि अगर वह काम नहीं करेगा तो समय बर्बाद होगा। ऐसे लोग छुट्टी के दिन भी लैपटॉप खोलकर बैठ जाते हैं।

सफलता की चमक में भीतर का अंधेरा: यह सच है कि ज्यादा काम करने वाले लोग जल्दी सफलता पा लेते हैं। ऑफिस में उनकी छवि जिम्मेदार और कर्मठ व्यक्ति की बनती है। प्रमोशन जल्दी मिलता है, आय बढ़ती है और समाज भी ऐसे लोगों को सम्मान की नजर से देखता है। लेकिन हर चमकती चीज सुकून नहीं देती। वर्कोहोलिक व्यक्ति बाहर से सफल दिख सकता है, मगर कई बार भीतर से टूटने लगता है। रिश्तों में दूरी आने लगती है। दोस्त छूट जाते हैं। परिवार के साथ बैठने का समय नहीं बचता। धीरे-धीरे जिंदगी सिर्फ टारगेट और डेडलाइन तक सीमित हो जाती है।

शरीर-मन के लिए अहितकर: विश्व स्वास्थ्य संगठन (डब्ल्यूएचओ) और इंटरनेशनल लेबर ऑर्गनाइजेशन (आईएलओ) के अध्ययन बताते हैं कि सप्ताह में 55 घंटे या उससे अधिक काम करना गंभीर स्वास्थ्य समस्याओं का कारण बन सकता है। हार्ट अटैक, ब्रेन स्ट्रोक, हाई ब्लड प्रेशर, अनिद्रा और मानसिक थकान जैसी समस्याएं बढ़ सकती हैं। ये रिपोर्ट्स संकेत देती हैं कि अत्यधिक काम अब सिर्फ जीवनशैली नहीं, स्वास्थ्य संकट बनता जा रहा है। लगातार या बिना आराम किए काम करने वाला व्यक्ति मानसिक रूप से भी कमजोर होने लगता है। चिंता, बेचैनी, अवसाद और चिड़चिड़ापन बढ़ने लगता है। कई बार इंसान को यह अहसास भी नहीं होता कि वह भीतर से टूट रहा है। वह सिर्फ यह सोचता रहता है कि थोड़ा और काम कर लूं, फिर आराम करूंगा। लेकिन ऐसा वक्त कभी नहीं आता।

रिश्तों पर पड़ता है बुरा असर: वर्कोहोलिज्म का सबसे गहरा असर रिश्तों पर पड़ता है। बच्चे पिता का इंतजार करते रहते हैं, पति-पत्नी के बीच बातचीत कम हो जाती है, दोस्तों से मुलाकातें खत्म होने लगती हैं। इससे रिश्ते भीतर से सूखने लगते हैं।

आराम है बहुत जरूरी: सच यह है कि इंसान मशीन नहीं है। शरीर को आराम चाहिए, मन को शांति चाहिए और आत्मा को अपनेपन की जरूरत होती है। अगर जिंदगी में सिर्फ काम ही बच जाए, तो उपलब्धियां भी एक दिन बोझ लगने लगती हैं। इसलिए कभी-कभी बिना किसी उद्देश्य के बैठना भी जरूरी होता है। अपने बच्चों के साथ हंसना, दोस्तों से बातें करना, किताब पढ़ना, संगीत सुनना, ये भी जिंदगी का हिस्सा हैं। जरूरत सिर्फ इतनी है कि हम अपने दिन की योजना समझदारी से बनाएं। *

कविता / कुलदीप सिंह भाटी

पिता

पिता अब तक नहीं बना पाए
अपनी माकूल जगह कविताओं में
नहीं है पिता में
आत्म-विश्वास की कोई कमी
और न ही कह सकते हैं
इसे उनकी असफलता
न ही ऐसा कि
बैठ नहीं पाते वे फिट
कविताओं में
और न ही कविताएं अक्षम हैं
बरत पाने में पिताओं को
पिता भी शायद ही सकुचाते हों
कविताओं संग आते हुए
पिता ने कविताओं को
बेटियों की तरह पाला
वे कभी-कभार क्षणांश
तब ही आ पाते हैं
आज भी कविताओं में
जब बेटियों सरीखी कविताएं
खुद दौड़ पड़ती हैं उनकी ओर
अपनी बांहों में भर लेने के लिए।

व्यंग्य / पूनम पांडे

फटकार का मौसम

हमारे लोकतंत्र में एक अद्भुत ऋतु आती है। न यह बरसात है, न बसंत, न चुनावी मौसम। इसका नाम है-फटकार ऋतु। इस ऋतु में मंत्री जी गरजते हैं, विधायक जी बरसते हैं, सांसद जी तमतमाते हैं और अधिकारी...। अधिकारी ऐसे बैठे रहते हैं, जैसे योग शिविर में अनुलोम-विलोम कर रहे हों।

जिले की समीक्षा बैठक शुरू होती है। नेता जी की त्यौरियां ऐसी चढ़ी होती हैं, मानो आज तो प्रशासन की शामत तय है। नेताजी पूछते हैं, 'यह सड़क अभी तक टूटी क्यों है?' अफसर कहते हैं, 'जी, टेंडर प्रक्रिया में है।' वे फिर पूछते हैं, 'अस्पताल में डॉक्टर नहीं हैं?' अधिकारी कहते हैं, 'जी, भर्ती प्रक्रिया में है।' नाराज होकर मंत्री जी पूछते हैं, 'तालाब सूखा क्यों है?' जवाब मिलता है, 'जी, वर्षा प्रक्रिया में है।' अब बेचारे बादल भी सोचते होंगे कि हमारे बरसने का ठेका भी किसी फाइल में अटक गया क्या! बैठक में जितनी बार 'प्रक्रिया' शब्द बोला जाता है, उतनी बार अगर काम हो जाए तो देश अगले सोमवार तक विकसित हो जाए।

नेता जी का गुस्सा भी बड़ा मेहनती होता है। मेज पर मुक्का मारते हैं। फाइलें कांप जाती हैं। पानी का गिलास हिल जाता है। कैमरे चौकन्ने हो जाते हैं। मगर अधिकारी? उनके चेहरे पर वही शांति, मुस्कान होती है, जो तपस्वी के चेहरे पर होती है। लगता है जैसे वे मन ही मन 'डांटाय नमः फटकाराय नमः' का जाप कर रहे हों।

अब अधिकारियों ने भी जीवन का गूढ़ दर्शन समझ लिया है। वे जानते हैं कि फटकार एक मौसमी फल है। मौसम आया, फल गिरा, मौसम गया, फल सड़ गया। बस! पहले जमाने में लोग चेचक निकलने पर प्रतिरोधक क्षमता विकसित कर लेते थे। अब सरकारी अफसर फटकार सुन-सुनकर आलोचना-प्रतिरोधक क्षमता विकसित कर चुके हैं। जिस अफसर को पांच साल में सौ फटकारें पड़ जाएं, उसे तो प्रशासनिक विश्वविद्यालय से मानद उपाधि मिलनी चाहिए, डॉक्टर ऑफ फटकार मैनेजमेंट।

आपने गौर किया होगा, अधिकारी डांट खाते समय कभी बहस नहीं करते, क्योंकि उन्हें मालूम है कि डांट की भी एक्सपायरी डेट होती है। बैठक समाप्त होते ही उसका असर वैसे ही उड़ जाता है, जैसे शादी के पंडाल से मेहमान। अगले दिन अखबार की हेडलाइन आती है। 'मंत्री जी का सख्त रुख, अधिकारियों की लगाई क्लास।' जनता चाय की चुस्की लेते हुए खुश हो जाती है 'चलो, आज तो खबर ली गई।' लेकिन उधर अधिकारी भी चाय की चुस्की लेते हुए कहते हैं, 'आज की हेडलाइन ठीक है। पिछली बार वाली फोटो ज्यादा अच्छी आई थी।' कभी-कभी तो लगता है कि सरकार को 'फटकार मंत्रालय' अलग से बना देना चाहिए। वहां रोज अभ्यास हो। सुबह नौ बजे-हल्की फटकार। दोपहर बारह बजे-कड़ी फटकार। शाम पांच बजे-अत्यंत कड़ी फटकार। रात को प्रेस नोट-भविष्य में लापरवाही बर्दाश्त नहीं की जाएगी। यह वाक्य इतना पुराना हो चुका है कि पुरातत्व विभाग चाहे तो इसे खुदाई में मिली धरोहर घोषित कर दे।

हमारे तंत्र में सबसे अद्भुत जीव अगर कोई है, जिसे किसी चिड़ियाघर में रखा जाना चाहिए, तो वह है-चिकना घड़ा अधिकारी। इस प्रजाति की विशेषता है कि डांट इस पर ऐसे फिसलती है, जैसे गरम तवे पर पानी। मंत्री जी पूछते हैं, 'काम क्यों नहीं हुआ?' उत्तर मिलता है, 'जी, प्रयास जारी है।' फिर पूछा जाता है, 'कब तक होगा?' जवाब मिलता है, 'जी, शीघ्र होगा।'

असल बीमारी यह नहीं कि कुछ अधिकारी काम नहीं करते। बीमारी यह है कि काम न करने की भी कोई कीमत उन्हें नहीं चुकानी पड़ती। जब कुर्सी पर धूल जम जाए मगर कुर्सी न हिले, तब डांट मनोरंजन बन जाती है। आखिर नेता भी क्या करें? वे हर बैठक में वही संवाद बोलते हैं। अधिकारी हर बैठक में वही उत्तर देते हैं। पत्रकार हर बैठक में वही खबर लिखते हैं। जनता हर बैठक में वही उम्मीद पालती है। लगता है पूरा प्रशासन किसी पुराने रेडियो नाटक का पुनर्प्रसारण बन गया है। *

पुस्तक चर्चा / विज्ञान भूषण

रोचक औपन्यासिक विमर्श

राजेंद्र यादव और मन्नू भंडारी के द्वारा लिखे गए उपन्यास 'एक इंच मुस्कान' को हिंदी साहित्य में अपनी तरह का अनोखा उपन्यास माना जाता है। अब से कुछ समय पूर्व प्रकाशित होकर आया उपन्यास 'फांसी' भी इसी धारा की कृति है। इसे भी दो लेखकों उद्भ्रांत और शैलेश पंडित ने मिलकर लिखा है। उपन्यास के आरंभिक सात अध्याय उद्भ्रांत ने लिखे फिर कई वर्षों के बाद अगले उन्नीस अध्याय शैलेश पंडित ने लिखकर इसे पूरा कर दिया था, पर उनके द्वारा किए गए कथांत से उद्भ्रांत संतुष्ट नहीं हुए और उन्होंने चार नए अध्याय लिखकर उपन्यास का अंत किया। तुलनात्मक रूप से उद्भ्रांत, शैलेश पंडित से वरिष्ठ हैं, लेकिन एक ही कथाभूमि पर दोनों ने जिस संतुलन के साथ कहानी को आगे बढ़ाया है, वह पाठक को अचरज में डाल सकता है। इसे पढ़ते हुए क्राइम थ्रिलर उपन्यास पढ़ने का भी एहसास होता है। उपन्यास के मुख्य पात्र का जीवन अनपेक्षित मोड़ों से होते हुए अपराध, जेल और फांसी के फंदे तक पहुंच जाता है। लेकिन यहीं पर आकर उपन्यास, किसी अपराधी को फांसी की सजा देने या न देने पर विमर्श का रूप लेता है। इस तरह उपन्यास का अंत न्याय प्रक्रिया में फांसी की सजा दिए जाने पर सवाल उठाता है। उपन्यास का कथा प्रवाह शुरू से अंत तक बांधे रखता है। *

किताब: फांसी (उपन्यास), **लेखक:** उद्भ्रांत-शैलेश पंडित,
मूल्य: 375 रुपए, **प्रकाशक:** न्यू वर्ल्ड पब्लिकेशन, नई दिल्ली

कला का मकसद असलियत को हूबहू दिखाना नहीं, बल्कि उतनी ही शिद्दत वाली एक असलियत बनाना है। -अल्बर्टो जियाकोमेटी

दूर से देखने पर कला की दुनिया करोड़ों डॉलर की नीलामियों और भव्य महोत्सवों से सजी एक सुनहरी जादुई दुनिया लगती है। ऐसा प्रतीत होता है, मानो कला बाजार अपने इतिहास के सबसे सुनहरे दौर से गुजर रहा है। लेकिन, इस बाहरी चकाचौंध के पीछे झांकते ही कैनवास पर बिखरे रंग कुछ और ही कहानी बयां करते हैं। बाहर से समृद्ध दिखने वाला यह कला जगत भीतर से एक ऐसे गंभीर संकट से जूझ रहा है, जो इसकी पूरी बुनियाद को हिला सकता है।

कला का कारोबार

कला केवल खरीदने और बेचने की वस्तु नहीं, बल्कि समाज की सोच, संवेदना और इतिहास का आईना होती है। मगर जब इसे केवल मुनाफे का साधन बना दिया जाता है, तो सबसे पहले उसकी रचनात्मक आत्मा ही प्रभावित होती है।

मार्क स्पीगलर
द न्यूयॉर्क टाइम्स

दूर से देखने पर कला की दुनिया किसी सुनहरे ख्वाब जैसी लगती है, जहां नीलामी घरों में करोड़ों डॉलर में पेंटिंग्स बिकती हैं, आलीशान शहरों में भव्य कला महोत्सव सजते हैं और नामचीन कलाकारों के पीछे अमीर खरीदारों की लंबी कतारें लगी रहती हैं। पहली नजर में ऐसा लगता है, मानो कला का बाजार अपने इतिहास के सबसे सुनहरे दौर से गुजर रहा है, पर जब इस चकाचौंध के पीछे झांकते हैं, तो कैनवास पर बिखरे रंग कुछ और ही कहानी बयां करते हैं। बाहर से समृद्ध दिखने वाली यह दुनिया भीतर ही भीतर एक ऐसे गंभीर संकट से जूझ रही है, जो पूरे कला जगत की बुनियाद को हिला सकता है।

करीब तीन दशकों तक कला जगत का हिस्सा रहने और दुनिया के सबसे प्रतिष्ठित ग्लोबल आर्ट फेयर 'आर्ट बेसल' का नेतृत्व करने के दौरान, मैंने इस जादुई दुनिया को बहुत करीब से महसूस किया है। पिछले दस वर्षों में दुनियाभर में अमीर लोगों की तादाद बहुत तेजी से बढ़ी, जिससे स्वाभाविक उम्मीद थी कि कला के कद्रदान और खरीदार भी बढ़ेंगे, और रिकॉर्ड तोड़ नीलामी की सुर्खियों ने इस भरोसे को और पक्का कर दिया। लेकिन, यह सिर्फ एक भ्रम था, क्योंकि कला बाजार की असली हकीकत नीलामी घरों से नहीं, बल्कि उन गैलरियों से तय होती है, जो इस पूरे इकोसिस्टम की रीढ़ हैं। गैलरी सिर्फ कलाकृतियां बेचने की दुकान नहीं होती, बल्कि यह नए कलाकारों को खोजती है, उन्हें तराशती है, पहचान दिलाती है और कला बाजार को जीवित रखती है। यही कारण है कि जब हाल के महीनों में मेरी मुलाकात दुनियाभर के गैलरी मालिकों से हुई, तो उनके चेहरों से उत्साह गायब था और उन्होंने स्वीकार किया कि बरसों पुराना उनका बिजनेस मॉडल अब दम तोड़ रहा है। यह डर बेबुनियाद भी नहीं है, क्योंकि पिछले एक साल में कई छोटी-बड़ी गैलरियां हमेशा के लिए बंद हो चुकी हैं। सबसे बड़ा झटका तब लगा, जब दुनिया की दिग्गज गैलरियों में शुमार 'पेस' ने अपने दर्जनों कलाकारों से नाता तोड़ लिया और बड़े पैमाने पर कर्मचारियों की छंटनी कर दी। आखिर रातों-रात ऐसा क्या बदल गया? इसका जवाब जितना सीधा है, उतना ही चौंकाने वाला भी।

दरअसल, कला की दुनिया का विस्तार तो बहुत तेजी से हुआ, लेकिन कला बाजार का वास्तविक आकार (मार्केट साइज) वहीं का वहीं रुक गया। कलाकार बढ़ गए, गैलरियां खुल गईं, प्रदर्शनियां और आर्ट फेयर भी दोगुने हो गए, लेकिन कुल बिक्री एक जगह पर ठहर गई। यानी, बाजार तो उतना ही रहा, लेकिन उसमें हिस्सा लेने वालों की संख्या बहुत बढ़ गई। इसलिए, प्रतिस्पर्धा पहले से कहीं ज्यादा कठिन हो गई।

अगर 2026 की आर्ट बेसल/यूबीएस आर्ट मार्केट रिपोर्ट के आंकड़ों को महंगाई के हिसाब से देखा जाए, तो तस्वीर और भी स्पष्ट हो जाती है। रिपोर्ट बताती है कि वास्तविक अर्थों में वैश्विक कला बाजार में पिछले वर्षों के दौरान लगभग कोई वृद्धि ही नहीं हुई। 2025 का बाजार आकार आज भी 2009 की वैश्विक मंदी और 2020 की महामारी के दौर के स्तर के आसपास ही ठहरा हुआ है। यही विरोधाभास आज पूरी कला दुनिया के सामने सबसे बड़ी चुनौती बनकर खड़ा है। आज गैलरियों के सामने दोहरी मार है। जहां एक तरफ उनकी बिक्री लगातार घट रही है या बेहद अनिश्चित हो चुकी है, वहीं दूसरी तरफ शहरों का भारी-भरकम किराया, कर्मचारियों का वेतन, प्रदर्शनियों का तामझाम और अंतरराष्ट्रीय मेलों में शामिल होने का खर्च आसमान छू रहा है। यदि गैलरियां इसी तरह कमजोर होती रहीं, तो इसका सबसे पहला और सीधा नुकसान युवा कलाकारों को होगा, जिनसे उनकी पहली उड़ान का मंच छिन जाएगा, क्योंकि बड़े संग्रहालयों और अंतरराष्ट्रीय आयोजनों के पीछे भी अक्सर गैलरियों का ही आर्थिक और पेशेवर सहयोग होता है।

एक दौर था, जब कला बाजार का पूरा ताना-बाना रिश्तों और आपसी भरोसे पर टिका होता था। छोटी-छोटी गैलरियां अक्सर उन मोहल्लों में खुलती थीं, जहां कलाकार रहते थे, और गैलरी संचालक व कला संग्रहकर्ता (कलेक्टर्स) आपस में एक परिवार की तरह जुड़े रहकर कला को निवेश नहीं, बल्कि सांस्कृतिक धरोहर मानते थे। पर, पिछले दो दशकों में कला का पूरी तरह बाजारीकरण हो गया और यह चमक-धमक, सेलिब्रिटी कल्चर तथा सोशल मीडिया का हिस्सा बनकर लाखों लोगों को आकर्षित तो करने लगी, पर इस लोकप्रियता के अनुपात में बाजार की वास्तविक कमाई नहीं बढ़ सकी। समस्या तब और गहरी हो गई, जब कला को पेंटिंग के बजाय एक 'फाइनेंशियल एसेट' या निवेश के रूप में देखा जाने लगा, जिसे कुछ आर्ट फंड्स और वेल्थ मैनेजर्स ने भी खूब हवा दी। लोग अब कलाकार की रचनात्मक यात्रा का हिस्सा बनने के लिए नहीं, बल्कि कम कीमत पर खरीदकर ऊंचे दामों पर तुरंत बेचने के लिए कला खरीदने लगे, जिन्हें कला जगत में 'फ्लिपर' कहा जाता है। इस शॉर्ट-टर्म मुनाफे की भूख ने कलाकारों के कॅरिअर को अस्थिर कर दिया है, क्योंकि जब किसी कलाकार की पेंटिंग बार-बार नीलामी में आती है, तो उसकी कीमतें कृत्रिम रूप से बढ़ती और अचानक गिर जाती हैं, जिससे कलाकार की साख हमेशा के लिए खत्म हो जाती है। इसके साथ ही, गैलरियों और कलेक्टर्स के रिश्ते की आत्मीयता कम हुई है। गैलरियां नए खरीदारों पर आसानी से विश्वास नहीं करतीं, जबकि खरीदारों को लगता है कि कला खरीदने की प्रक्रिया जरूरत से ज्यादा जटिल बना दी गई है। इससे खरीदार अब सीधे नीलामी घरों का रुख करने लगे हैं।

इस संकट का एक और दिलचस्प पहलू नई पीढ़ी के खरीदारों की मानसिकता है, जहां आज का युवा उद्यमी या टेक-प्रोफेशनल कला खरीदने से पहले बेहद व्यावहारिक सवाल पूछता है। वह सोचता है कि एक महंगी पेंटिंग खरीदने के बाद उसे सुरक्षित रखने, उसका बीमा कराने, शिपिंग करने और समय-समय पर उसके रखरखाव पर भारी पैसा और समय खर्च होगा। ऐसे में, उसके लिए शेयर बाजार, स्टार्टअप या दूसरे निवेश अधिक आसान और सुविधाजनक विकल्प बन जाते हैं। ऐसे हालात में सवाल उठता है कि क्या इस संकट से बाहर निकलने का कोई रास्ता है? इसका जवाब है-हां, लेकिन इसके लिए कला जगत को अपनी पुरानी ताकतों की ओर लौटना होगा। इसके लिए गैलरियों को सख्त रीसेल एग्रीमेंट (पुनर्विक्रय समझौते) अपनाने होंगे, ताकि खरीदार तुरंत मुनाफा कमाने के लिए कलाकृति न बेच सकें। सोच में यह बदलाव लाना भी जरूरी है कि कला को निवेश का साधन बनाना बंद किया जाए, क्योंकि पेंटिंग की सबसे बड़ी कीमत उसकी रचनात्मकता और समाज पर उसका प्रभाव है, न कि उसकी नीलामी की रकम। साथ ही, गैलरियों को दुनियाभर के हर बड़े शहर में शाखाएं खोलने और हर अंतरराष्ट्रीय कला महोत्सव में भाग लेने की अंधी दौड़ के जाल से बाहर निकलना होगा। महामारी ने हमें सिखाया कि जब अंतरराष्ट्रीय उड़ानें बंद थीं, तब गैलरियों ने अपने ही स्थानीय खरीदारों से संपर्क साधा और परिणाम बेहद शानदार रहे।

कला की दुनिया आज भी उतनी ही जीवंत है, बस जरूरत इसकी बढ़ती लोकप्रियता और इसके आर्थिक ढांचे के बीच दोबारा संतुलन कायम करने की है। जिस दिन गैलरियां व्यक्तिगत संवाद, स्थानीय रिश्तों और कलाकारों के विकास को अपनी प्राथमिकता बना लेंगी, यह संकट खुद-ब-खुद दूर हो जाएगा, क्योंकि कला केवल बिकने वाली वस्तु नहीं, बल्कि हमारे समाज की सांस्कृतिक स्मृति है।

जानना जरूरी है
संस्कृति के पन्नों से

आशुतोष गर्ग
लेखक एवं अनुवादक

वाराणसी के वैभव को देखकर महादेव ने अपने गण निकुंभ को आदेश दिया कि किसी को कष्ट पहुंचाए बिना इस नगरी को मनुष्यों से रिक्त कर दिया जाए।

शिव ने खाली कराई वाराणसी नगरी

किसी समय वाराणसी पर यदुवंशी राजा भद्रश्रेण्य का शासन था। उसके सौ पुत्र थे, किंतु राजा दिवोदास ने उन सबको परास्त कर दिया और वाराणसी पर अधिकार करके उसे अपनी राजधानी बना लिया। दिवोदास के शासन में वाराणसी अत्यंत वैभवशाली हो गई। उधर, देवी पार्वती के साथ विवाह के बाद भगवान शिव कुछ समय तक हिमालय में ही रहे। परंतु, पार्वती जी की माता मैना को यह विवाह शुरू से ही पसंद नहीं था। वह प्रायः शिव और उनके गणों की निंदा करती थीं।

धूप आने दो

एक दिन उन्होंने पार्वती जी से कहा, 'उमा! तुम्हारे पति महादेव विचित्र स्वभाव के हैं। वह श्मशान में रहते हैं और उनके गण भी अनोखे आचरण वाले हैं। तुम्हें उनके साथ इतना कष्ट सहने की क्या आवश्यकता है?' यह सुनकर माता पार्वती का हृदय आहत हो गया। उन्होंने भगवान शिव से कहा, 'नाथ! अब मैं अपने मायके में नहीं रहना चाहती। मुझे अपने घर ले चलिए।' तब भोलेनाथ ने विचार किया कि पृथ्वी पर ऐसा कौन-सा स्थान है, जहां वे दोनों स्थायी रूप से निवास कर सकें। उनकी दृष्टि वाराणसी पर पड़ी, जो तप, धर्म और सिद्धियों की भूमि थी। उस समय वहां राजा दिवोदास का शासन था। अतः शिवजी ने अपने प्रिय गण निकुंभ को बुलाकर कहा, 'तुम किसी को कष्ट पहुंचाए बिना ऐसा उपाय करो कि वाराणसी नगरी मनुष्यों से रिक्त हो जाए। तब हम वहां निवास कर सकेंगे।'

निकुंभ वाराणसी पहुंचे। उन्होंने नगर के एक नाई कंडुक को स्वप्न में दर्शन देकर कहा, 'नगर के द्वार पर मेरी प्रतिमा स्थापित करो और मेरे लिए एक मंदिर बनवाओ। मैं तुम्हारा और नगरवासियों का कल्याण करूंगा।' अगले दिन सुबह कंडुक ने राजा की अनुमति लेकर नगर के प्रवेश द्वार पर निकुंभ की भव्य प्रतिमा स्थापित करवाई। प्रतिदिन वहां धूप, दीप, पुष्प और नैवेद्य आदि से पूजा होने लगी। शीघ्र ही निकुंभ की ख्याति चारों ओर फैल गई।

इस बीच राजा दिवोदास की रानी सुयशा भी पुत्र की इच्छा लेकर निकुंभ की पूजा करने पहुंची। उसने अनेक व्रत किए, प्रार्थना की, किंतु उसे पुत्र प्राप्ति का वरदान नहीं मिला।

वास्तव में निकुंभ जानबूझकर उन्हें वर नहीं दे रहे थे। उनके मन में यही विचार था कि राजा क्रोधित होकर कोई अनुचित कार्य करेगा, तभी वाराणसी मनुष्यों से रिक्त हो पाएगी।

लंबे समय तक प्रतीक्षा करने के बाद राजा का धैर्य टूट गया और उसने क्रोध में निकुंभ का मंदिर तुड़वा दिया। यह अपमान देखकर निकुंभ ने राजा को शाप दिया, 'दिवोदास! तुमने बिना किसी अपराध के मेरा स्थान नष्ट कराया है। इसलिए, यह समृद्ध वाराणसी शीघ्र ही जनशून्य हो जाएगी!' शाप का प्रभाव तत्काल दिखाई देने लगा। नगर में भय और अशांति फैल गई। कुछ ही समय में वैभवशाली वाराणसी मनुष्यों से रिक्त होकर उजाड़ बन गई। इसके बाद निकुंभ, महादेव के पास लौट आए और सारी घटना सुनाई। शिवजी व माता पार्वती वाराणसी में रहने लगे। यही स्थान आगे चलकर उनका प्रिय निवास बना। वहां कोई स्थायी भवन न होने के कारण पार्वती जी को प्रसन्नता नहीं हुई। उन्होंने शिवजी से कहा, 'नाथ! यहां मेरा मन नहीं लगता। चलिए, किसी और स्थान पर चलते हैं।' यह सुनकर भगवान मुस्कुराए और बोले, 'देवी! यह अविमुक्त क्षेत्र ही अब मेरा सनातन निवास है। मैं इसे छोड़कर कभी नहीं जाऊंगा। यदि तुम्हारी इच्छा हो, तो तुम अपने मायके जा सकती हो, किंतु मैं यहीं रहूंगा।'

महादेव के इन वचनों के कारण वाराणसी 'अविमुक्त क्षेत्र' के नाम से प्रसिद्ध हुई। मान्यता है कि सत्य, त्रेता और द्वापर, इन तीनों युगों में भगवान शिव और पार्वती ने यहां निवास किया। फिर, कलियुग आरंभ होने पर महादेव की वाराणसी नगरी उजड़ जाती है और कुछ समय पुनः बस जाती है। इस प्रकार यह उजड़ती-बसती रहती है। इसी कारण, वाराणसी को शिव की अनंत नगरी, मोक्षदायिनी और अविमुक्त कहा जाता है।

अशास्त्रविदुषां तेषां न
कार्यमहितं वचः।
अर्थशास्त्रानभिज्ञानां विपुलां
श्रियमिच्छताम्॥

राक्षसराज रावण से कुंभकर्ण कहता है-शास्त्र के शून्य ज्ञान व अर्थशास्त्र से अनभिज्ञ होते हुए भी प्रचुर संपत्ति चाहने वाले अयोग्य मंत्रियों की बात शासक को कभी नहीं माननी चाहिए।
-वाल्मीकि रामायण (6.63.15)

प्रस्तुति : शास्त्री कोसलेंद्रदास

कुदरत के साथ कुछ पल बिताएं

जैंसी डन
द न्यूयॉर्क टाइम्स

कभी-कभी दिमाग को सबसे बड़ी राहत किसी डिजिटल डिटॉक्स से नहीं, बल्कि मिट्टी, पत्तियों और पत्थरों के बीच बिताए गए कुछ शांत पलों से मिलती है।

क्या आपने कभी सिर्फ कुछ पत्थरों, पत्तियों और टहनियों की मदद से कोई कलाकृति बनाई है? अगर नहीं, तो एक बार जरूर आजमाइए। यह न केवल आपकी रचनात्मकता को जगाएगा, बल्कि मानसिक स्वास्थ्य के लिए भी बेहद फायदेमंद साबित हो सकता है। खास बात यह है कि यह गतिविधि आपको स्क्रीन से दूर ले जाकर प्रकृति से दोबारा जोड़ती है।

ब्रिटिश कलाकार और पर्यावरणविद एंडी गोल्डस्वर्थी वर्षों से प्राकृतिक वस्तुओं से अस्थायी 'लैंड आर्ट' बनाते रहे हैं। उनकी बनाई कलाकृतियां प्रकृति में ही रहती हैं और समय के साथ धीरे-धीरे खत्म हो जाती हैं। गोल्डस्वर्थी मानते हैं कि ऐसी कला हमें प्रकृति को नए नजरिये से देखने और उसके साथ अपने गहरे रिश्ते को महसूस करने का अवसर देती है।

ड्रेक्सेल यूनिवर्सिटी की हेल्थ, आर्ट्स, लर्निंग एंड इवैल्यूएशन रिसर्च लैब की संस्थापक गिरिजा कैमल कहती हैं कि लैंड आर्ट बनाना बेहद आसान है। इसके लिए किसी विशेष प्रशिक्षण या महंगे सामान की जरूरत नहीं होती। बस किसी पार्क, बगीचे या खुले स्थान पर जाएं और वहां मौजूद सूखी पत्तियां, पत्थर, टहनियां, पेड़ की छाल या अन्य गिरी हुई प्राकृतिक चीजें इकट्ठा करें। अब इनसे गोलाकार आकृतियां, सर्पिल डिजाइन (नेचर मंडला) या अलग-अलग आकार बनाएं। मोनमाउथ यूनिवर्सिटी में मनोविज्ञान की प्रोफेसर मेगन डेलाने कहती हैं कि अगर यह कला खुले वातावरण में बनाई जाए, तो इसके फायदे और भी बढ़ जाते हैं। शोध भी बताते हैं कि कला का सृजन तनाव कम करता है, आत्मविश्वास बढ़ाता है और मन को सकारात्मकता प्रदान करता है। वहीं, प्रकृति के बीच समय बिताने से मानसिक शांति, एकाग्रता और भावनात्मक संतुलन बेहतर होता है। जब ये दोनों गतिविधियां एक साथ होती हैं, तो उनके लाभ भी दोगुने हो जाते हैं। डेलाने के अनुसार, पत्थरों को सजाना और पत्तियों को व्यवस्थित करना ध्यान (मेडिटेशन) की तरह काम करता है। आप इस गतिविधि को परिवार या दोस्तों के साथ भी कर सकते हैं। इससे रचनात्मकता के साथ आपसी जुड़ाव मजबूत होता है।

स्क्रीन से दूर रहकर रचनात्मक बनने के कई और तरीके भी हैं। किसी पार्क में बैठकर स्केच बनाइए, संग्रहालय या कला प्रदर्शनी में जाइए या प्रकृति को ध्यान से देखिए। कभी-कभी दिमाग को सबसे बड़ी राहत किसी डिजिटल डिटॉक्स से नहीं, बल्कि मिट्टी, पत्तियों और पत्थरों के बीच बिताए गए कुछ शांत पलों से मिलती है।

©The New York Times 2026

अध्ययन कक्ष

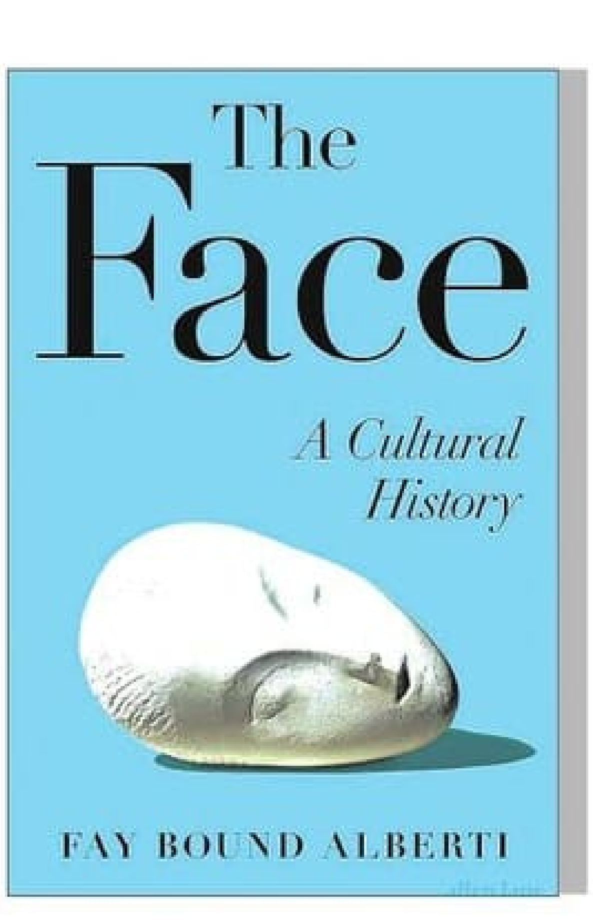

द फेस: ए कल्चरल हिस्ट्री

लेखिका : फे बाउंड अल्बर्टी

प्रकाशक : पेंगुइन

मूल्य : 3,031 रुपये (हार्डकवर)

आखिर क्या कहता है आपका चेहरा

इतिहासकार फे बाउंड अल्बर्टी की यह शीघ्र प्रकाश्य किताब दिखाती है कि पुनर्जागरणकालीन चित्रों से लेकर आधुनिक सेल्फी संस्कृति तक चेहरे को देखने, समझने और उसके आधार पर निर्णय लेने के तरीके समय के साथ कैसे बदलते रहे हैं।

आजकल हम इन्सानी चेहरे के साथ अपने रिश्ते को बहुत सामान्य बात मानते हैं, मानो यह हमेशा से ही हमारी पहचान रहा हो। लेकिन, हमेशा ऐसा नहीं था। चेहरा शरीर का वह एकमात्र हिस्सा है, जहां हमारी सभी इंद्रियां एक साथ मिलती हैं और इन्सानी इतिहास में इसने हमारी व्यक्तिगत पहचान को दर्शाने का काम किया है।

हम फेशियल रिकॉग्निशन से अपना फोन अनलॉक करते हैं; पासपोर्ट पर हमारे चेहरे की तस्वीर होती है और भले ही उम्र बढ़ने, दुर्घटना, बीमारी या जीवनशैली के कारण चेहरे में बदलाव आ जाएं, फिर भी वह हमारी पहचान का एक आधार बना रहता है।

फे बाउंड अल्बर्टी 'प्रोसोपैग्नोसिया' (चेहरा न पहचान पाने की बीमारी) से पीड़ित हैं। यह एक ऐसी स्थिति है, जिसमें चेहरों और उनसे जुड़ी निशानियों को याद रखना लगातार बनी रहने वाली चुनौती होती है। इसका मतलब है कि वह किसी चेहरे और उस व्यक्ति के बीच के संबंध को याद नहीं रख पातीं, भले ही वे उनके करीबी रिश्तेदार, दोस्त या सहकर्मी ही क्यों न हों। लेकिन, अल्बर्टी अपनी बीमारी के बारे में विस्तार से नहीं बतातीं, बल्कि वह एक बड़ा और दिलचस्प अध्ययन पेश करती हैं कि हम अपनी और एक-दूसरे की तस्वीरों को कैसे देखते हैं और हजारों वर्षों में कला, तकनीक, चिकित्सा विज्ञान, मनोविज्ञान और नौकरशाही के जरिये यह प्रक्रिया कैसे बदली है। *द फेसः ए कल्चरल हिस्ट्री* चेहरे से जुड़े विज्ञान, टेक्नोलॉजी और पोर्ट्रेट, आईने और फिजियोग्नोमिक्स (चेहरे के आधार पर उसके चरित्र या व्यक्तित्व का आकलन करना) से लेकर पासपोर्ट, सेल्फी और फेस ट्रांसप्लांट तक की यात्रा है।

अल्बर्टी चेहरे और व्यक्ति की पहचान के बीच के रिश्ते को बताने के लिए 'फेसहुड' शब्द गढ़ती हैं और कहती हैं कि भावनाओं व शरीर की तुलना में चेहरों पर कम अध्ययन हुआ है। सुंदरता और खुद को एक वस्तु की तरह देखने की सोच लेखिका को सोचने पर मजबूर करती है। *द फेस* में, वह यह पता लगाती हैं कि इन्सानों ने चेहरों को किस तरह समझा है और कैसे चेहरों ने नैतिकता, सामाजिक ऊंच-नीच, मनोविज्ञान और ऐसी ही कई चीजों के बारे में हमारी सोच को आकार दिया है। वह उन पूर्वाग्रहों को भी उजागर करती हैं, जो हमारी रोजमर्रा की जिंदगी पर असर डालते हैं। वह बताती हैं कि कैसे नई तकनीक और सांस्कृतिक बदलावों ने हमारी अपनी पहचान के बारे में हमारी सोच को बदला है।

बाउंड अल्बर्टी चेहरा बदलने की सर्जरी (फेस ट्रांसप्लांट) से जुड़ी नैतिक बातों की जानकार हैं। उनकी किताब के आखिरी अध्याय में उन सर्जरी के संदिग्ध वादों को लेकर चिंताएं जताई गई हैं, जो गंभीर रूप से चेहरा बिगड़ने पर की जाती हैं। वह कॉस्मेटिक सर्जरी और फोटो फिल्टर के प्रति किसी भी झुकाव का विरोध करने की सलाह देती हैं और कहती हैं कि हमें 'ऐसी दुनिया बनाने की कोशिश करनी चाहिए, जो इन्सानी कीमत को दिखावे से कहीं ज्यादा अहमियत दे।'

दिलचस्प रिसर्च, इंटरव्यू और जानकारीपूर्ण निजी अनुभवों को एक साथ लाकर, बाउंड अल्बर्टी गहराई से यह समझाने की कोशिश करती हैं कि हमारे चेहरे असल में हमारे बारे में क्या बताते हैं।

अभियान

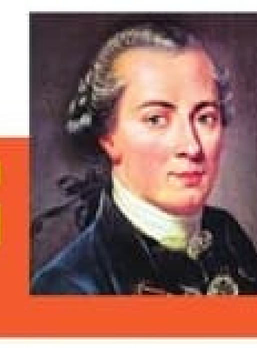

"नासमझी का मतलब है, किसी दूसरे के मार्गदर्शन के बिना अपनी बुद्धि का इस्तेमाल न कर पाना।
- इमैनुएल कांट

amarujala.com
अमर उजाला

Hindi@mithelesh
■ मिथिलेश बारिया

गोल चबूतरा

वो मंदिर के बाहर मांग रहा था,
तुम अंदर...
तुम सब भूल जाती हो,
याद है न तुम्हें...
तुम बात करते हो इन्सानों की?
अरे यहां अगरबत्तियों के मजहब होते हैं...

डाइमैक्सियन कार का पहला प्रोटोटाइप

1933 में आज के ही दिन अमेरिकी वास्तुकार, इंजीनियर और विचारक आर. बकमिंस्टर फुलर ने यातायात की पारंपरिक धारणाओं को चुनौती देने वाली डाइमैक्सियन कार का पहला प्रोटोटाइप पेश किया था। तीन पहियों वाली यह अनोखी गाड़ी लंबी, वायुगतिकीय और बेहद अलग दिखती थी।

झरोखा
12 जुलाई

इसका आगे का हिस्सा दो पहियों पर टिका था, जबकि पीछे का एक पहिया दिशा बदलने के लिए इस्तेमाल होता था। इसी कारण कार को बहुत कम जगह में मोड़ा जा सकता था और यह बहुदिशात्मक गतिशीलता का अनुभव देती थी। 'डाइमैक्सियन' शब्द फुलर के विचार 'डायनेमिक मैक्सिमम टेंशन' से जुड़ा था-कम संसाधनों में अधिकतम उपयोगिता हासिल करने का सिद्धांत। फुलर का सपना केवल कार बनाना नहीं था, वे ऐसी परिवहन व्यवस्था की कल्पना कर रहे थे जो तेज, हल्की, ईंधन-कुशल और भविष्य के शहरों के अनुकूल हो।

हालांकि इसकी असाधारण बनावट और नियंत्रण संबंधी चुनौतियों के कारण यह व्यावसायिक रूप से सफल नहीं हुई। फिर भी डाइमैक्सियन कार आज नवाचार, प्रयोगधर्मिता और टिकाऊ गतिशीलता के शुरुआती सपनों का प्रतीक मानी जाती है।

■ विश्वनाथ सिंह, जम्मू

स्टार के लिए स्टार का क्लैप

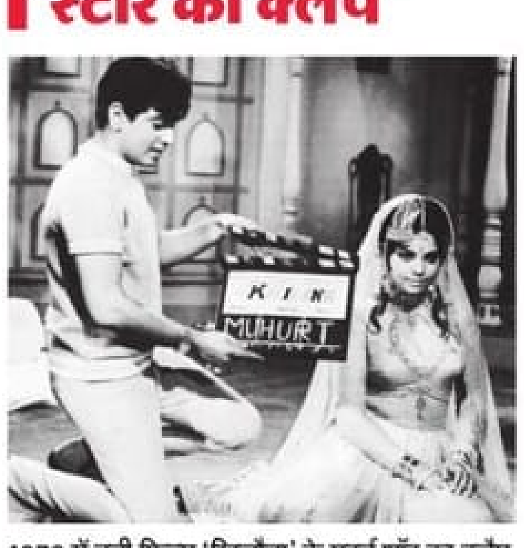

1970 में बनी फिल्म 'खिलौना' के मुहूर्त शॉट का क्लैप मशहूर अभिनेता जितेंद्र ने दिया था। इसमें मुमताज और संजीव कुमार ने बेहतरीन अभिनय किया था।

■ उत्तम सिंह, अल्मोड़ा

छायानट

पहले गीत बाद में संगीत

हिंदी सिनेमा में गीतकार भरत व्यास का नाम उन रचनाकारों में लिया जाता है, जिन्होंने लोकप्रियता के साथ साहित्यिक गरिमा को हमेशा कायम रखा। बचपन में माता-पिता को खोने के बाद उन्होंने कठिन परिस्थितियों में शिक्षा पूरी की। कविता के प्रति उनका लगाव ही उनकी आजीविका बना और कोलकाता के कवि-सम्मेलनों ने उन्हें पहचान दिलाई। उनके गीत ग्रामोफोन रिकॉर्डों के माध्यम से देशभर में लोकप्रिय हुए।

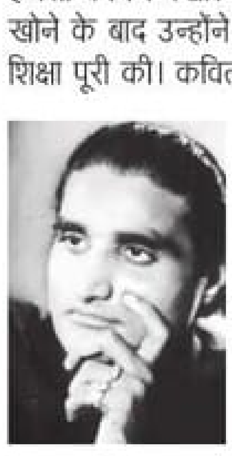

फिल्मी दुनिया में उनके कॅरिअर की शुरुआत पुणे की शालीमार फिल्म कंपनी से हुई, जहां उन्होंने 'सावन आया रे', 'रिमझिम' और 'बिजली' जैसी फिल्मों के लिए गीत लिखे। विभाजन के बाद वह चेन्नई पहुंचे और जैमिनी पिक्चर्स की फिल्म 'चंद्रलेखा' से जुड़े। भरत व्यास का मानना था कि गीत पहले लिखा जाना चाहिए और संगीत बाद में रचा जाना चाहिए। 'नवरंग' का 'आधा है चंद्रमा रात आधी' गीत उनकी सृजनशीलता का प्रमाण है। उन्होंने पश्चिमी शैली के क्षणिक आकर्षण के बजाय भारतीय संवेदना और अर्थपूर्ण गीतों को प्राथमिकता दी। 'परिणीता' का 'चली राधे रानी' इसका सशक्त उदाहरण है।

■ सुजीत यादव, फिरोजपुर

मानसून के दौरान शहरों में हर तरफ पानी दिखाई देना अब सामान्य बात हो गई है। यह केवल प्रशासनिक विफलता नहीं, बल्कि हमारी लापरवाही का भी परिणाम है।

सिर्फ प्रशासन नहीं, हम भी जिम्मेदार

स्मार्ट शहर में लबालब पानी

हर साल मानसून के दौरान बड़े महानगरों से लेकर छोटे कस्बों तक में जलभराव की समस्या विकराल रूप ले लेती है। मुंबई, दिल्ली, गुरुग्राम, पटना, लखनऊ और हैदराबाद जैसे शहरों में थोड़ी सी तेज बारिश भी सड़कों को तालाब में बदल देती है। इस स्थिति के लिए प्रशासन की लापरवाही जिम्मेदार है, लेकिन नागरिकों की अनदेखी भी उतनी ही बड़ी वजह है।

अधिकांश शहरों की जल निकासी व्यवस्था पुरानी और जर्जर हो चुकी है।

चिट्ठी 1

नालों की समय पर सफाई नहीं होती, कई प्राकृतिक जलमार्गों, तालाबों और झीलों पर अतिक्रमण कर निर्माण कर दिए गए हैं, जिससे वर्षा जल के बहाव का रास्ता बंद हो जाता है। वहीं, लोग प्लास्टिक, घरेलू कचरा, निर्माण मलबा और अन्य अपशिष्ट नालियों में फेंक देते हैं। इससे सीवर जाम हो जाते हैं और थोड़ी सी बारिश भी जलभराव का कारण बन जाती है। स्वच्छता के प्रति उदासीनता और 'यह सरकार का काम है' जैसी मानसिकता भी समस्या को बढ़ाती है। यदि हर नागरिक कचरे का सही निपटान करे, गीले और सूखे कचरे को अलग रखे, प्लास्टिक का उपयोग कम करे और आसपास की सफाई का ध्यान रखे, तो हालात काफी हद तक सुधर सकते हैं। हम-आप भी नालियों की सफाई और जागरूकता अभियानों में सक्रिय भूमिका निभा सकते हैं। जलभराव केवल इंजीनियरिंग या प्रशासनिक चुनौती नहीं, बल्कि नागरिक जिम्मेदारी की भी परीक्षा है। जब प्रशासन बेहतर योजनाओं के साथ काम करेगा और नागरिक अपने कर्तव्यों का ईमानदारी से पालन करेंगे, तभी वास्तव में स्वच्छ, सुरक्षित और स्मार्ट शहरों का सपना साकार हो सकेगा।

■ मुनीष भाटिया, कुरुक्षेत्र

निजता और विश्वास के साथ खिलवाड़ ठीक नहीं

आज शायद ही कोई ऐसा व्यक्ति होगा, जो सोशल मीडिया का उपयोग न करता हो। हम खुशियां, परिवार की तस्वीरें, बच्चों की मुस्कान और जीवन के खास पल इस भरोसे के साथ साझा करते हैं कि उन पर हमारा अधिकार बना रहेगा। लेकिन जब इन्हीं तस्वीरों का उपयोग बिना अनुमति के एआई)को प्रशिक्षित करने के लिए होने लगे, तो चिंता होना स्वाभाविक है।

मेटा के नए एआई टूल 'म्यूज इमेज' के फीचर को केंद्र सरकार द्वारा जांचा जाना इस बात का संकेत है कि मामला केवल तकनीक का नहीं, बल्कि लोगों की निजता और विश्वास का भी है। बिना अनुमति तस्वीरों का उपयोग होने से पहचान की चोरी, फर्जी तस्वीरें, डीपफेक और ऑनलाइन धोखाधड़ी जैसी घटनाएं बढ़ सकती हैं। ऐसे में आम नागरिक से लेकर कंटेंट क्रिएटर्स तक, सभी प्रभावित हो सकते हैं। इससे पहले भी मेटा के स्वामित्व वाले व्हाट्सएप के 'यूजरनेम फीचर' पर आपत्ति जताई जा चुकी है। तकनीक का उद्देश्य जीवन को आसान बनाना है। यदि किसी व्यक्ति की तस्वीर उसकी सहमति के बिना एआई का हिस्सा बनती है, तो यह भरोसे पर चोट है। नई तकनीक का स्वागत हो, लेकिन उसकी नींव पारदर्शिता और जवाबदेही पर ही टिकनी चाहिए। तभी तकनीक और समाज के बीच विश्वास बना रहेगा।

चिट्ठी 2

■ कृष्ण कुमार मौर्य, अंबेडकरनगर

आखिरी बार दिखेंगे ये सितारे मैदान पर

2026 का फीफा वर्ल्ड कप अमेरिका, मेक्सिको और कनाडा में खेला जा रहा है। फुटबाल वर्ल्ड कप के इस रोमांच में पूरी दुनिया डूबी हुई है। फुटबाल के इस महाकुंभ को हमेशा याद रखा जाएगा, क्योंकि यह मेसी, रोनाल्डो और नेमार जैसे दिग्गज खिलाड़ियों का आखिरी विश्व कप है। ये ऐसे खिलाड़ी रहे, जिन्होंने सिर्फ फुटबाल को एक खेल नहीं, बल्कि अपना एक धर्म बना लिया।

चिट्ठी 3

मेसी (अर्जेंटीना), रोनाल्डो (पुर्तगाल), नेमार (ब्राजील) के विराट खेल ने एक तरह से पूरी दुनिया को फुटबाल के जादू में डुबो के रख दिया। एक तरह से देखा जाए तो फुटबाल जगत के लिए यह समय काफी भावुक और ऐतिहासिक होगा, क्योंकि दर्शक ऐसे युग के अंतिम दृश्य को अपनी आंखों के सामने घटते हुए देख रहे हैं। इन खिलाड़ियों ने साबित किया कि महानता केवल एक सीजन या कुछ मैचों की मोहताज नहीं होती। मेसी, रोनाल्डो, नेमार ने अपने खेल से जो परिभाषा गढ़ी, उसने आने वाली पीढ़ी के लिए बेंचमार्क सेट कर दिया, इन तीनों खिलाड़ियों ने सिखाय की गरीबी और बीमारी दृश्य संकल्प और हौसले के आगे बौनी साबित होती है। मौजूदा पीढ़ी इस बात को लेकर गौरवान्वित महसूस करेगी उसने युग को अपने आंखों से खेलते हुए देखा।

■ विजय किशोर तिवारी, नई दिल्ली

इनकी चिट्ठियां भी सराहनीय रहीं

बरेली से सीमा गुप्ता, दिल्ली से मोहम्मद जुबैर, मेरठ से इं. कवि अतिवीर जैन 'पराग', रुड़की से डॉ. घनश्याम बादल, मोहाली से अभिलाषा गुप्ता, लुधियाना से अनिल कुमार तलवाड़, शाजापुर से एमएम राजावत राज, बड़वाह से योगेश जोशी, झाबुआ से अरविंद रावल, इंदौर से अमृतलाल मारू 'रवि', सूरत से कांतिलाल मांडोत।

हमें लिखें
abhiyan@amarujala.com

कुछ अलग

अचानक गायब हो जाती है झील

दुनिया में एक ऐसी झील है, जिसका करोड़ों घनमीटर पानी कुछ ही घंटों में बह जाता है और झील पूरी तरह सूख जाती है।

जलवायु परिवर्तन का असर हर क्षेत्र पर पड़ रहा है। मध्य एशिया की अराल सागर और चीन की होंगजियाननाओ झील इसके प्रमुख उदाहरण हैं, जो दशकों में लगभग लुप्त हो गईं। दक्षिणी चिली के पैटागोनिया क्षेत्र में स्थित 'कैशे द्वितीय' झील का मामला और भी चौंकाने वाला है, क्योंकि यह कई बार एक ही रात में पूरी तरह गायब हो जाती है।

दरअसल, यह एक हिमनद है, जो एंडीज पर्वतमाला के बीच लगभग दो वर्गमील क्षेत्रफल वाली कोलोनिया ग्लेशियर से घिरी हुई है। कुछ सालों पहले यहां के लोगों ने देखा कि रात भर में लगभग 90 फीट गहरा पानी गायब हो चुका था और वहां केवल सूखी रेतीली घाटी, छोटे-छोटे जलकुंड तथा बर्फ के बड़े टुकड़े बचे थे। यह कोई रहस्य नहीं, बल्कि जलवायु परिवर्तन का असर था। बढ़ते तापमान के कारण ग्लेशियर कमजोर पड़ जाता है और उसके भीतर सुरंग बन जाती है, जिससे करोड़ों घनमीटर पानी कुछ ही घंटों में निकल कर चिली की सबसे बड़ी नदी 'बेकर' में जा मिलता है। नदी में जल स्तर बढ़ने से बाढ़ जैसे हालात पैदा हो जाते हैं और कई किलोमीटर दूर तक विशाल लहरें उठती हैं। हालांकि स्थानीय लोगों के लिए इस तरह की घटना नई नहीं है। उन्होंने इसके साथ जीना सीख लिया है। झील में बाढ़ की स्थिति पैदा होने से बचाव के लिए चेतावनी प्रणाली विकसित की गई है, जो उन्हें कई घंटे पहले सचेत कर देती है, जिससे वे अपने पशुओं सहित सुरक्षित स्थानों पर पहुंच जाते हैं। फिर भी क्षेत्र में कई बार ग्लेशियर झीलों के फटने से आई कीचड़युक्त बाढ़ से पूरे के पूरे गांव तबाह हो गए थे।

संयुक्त राष्ट्र के अनुसार, पैटागोनिया के ग्लेशियर दुनिया के अन्य क्षेत्रों की तुलना में अधिक तेजी से पिघल रहे हैं। वैज्ञानिकों का अनुमान है कि भविष्य में एंडीज क्षेत्र की ऐसी झीलों के गायब होने की घटनाएं और बढ़ेंगी।

■ अमरेंद्र, सोलन

लेखिका का कमरा और विवाह की दीवारें

क्या केवल अपना एक कमरा और आर्थिक स्वतंत्रता किसी स्त्री को रचनात्मक रूप से मुक्त कर सकती है या उसकी प्रतिभा को खिलने के लिए एक सम्मानजनक वैवाहिक संबंध भी उतना ही जरूरी है?

रामचंद्र गुहा
जाने-माने इतिहासकार

वर्जीनिया वूल्फ ने 1929 में कैंब्रिज यूनिवर्सिटी में एक व्याख्यान दिया था। उसमें उन्होंने अंग्रेजी साहित्य के इतिहास में पुरुष लेखकों के वर्चस्व की ओर ध्यान दिलाया। उनका कहना था कि इसका कारण पुरुषों की श्रेष्ठ साहित्यिक प्रतिभा नहीं, बल्कि वह सामाजिक व्यवस्था है, जिसने सदियों तक महिलाओं को समान अवसर नहीं दिए। उनका तर्क था कि पुरुषों के लेखन की तरह महिलाओं का लेखन भी तभी विकसित और समृद्ध हो सकता है, जब उन्हें राजनीतिक अधिकारों के साथ आर्थिक स्वतंत्रता भी मिले। इसी संदर्भ में उनका प्रसिद्ध कथन है- "कथा साहित्य लिखने के लिए किसी स्त्री के पास अपना पैसा और अपना एक कमरा होना चाहिए।"

वर्जीनिया वूल्फ आर्थिक रूप से सुरक्षित थीं और समाज में प्रतिष्ठित स्थान रखती थीं, लेकिन उनके जीवन में एक और ऐसी शक्ति थी, जिसका उल्लेख उन्होंने इस विचार में नहीं किया। वह थे उनके पति लियोनार्ड वूल्फ। वे लेखक थे, फिर भी उन्होंने स्वीकार किया कि उनकी पत्नी उनसे कहीं अधिक प्रतिभाशाली हैं। उन्होंने पूरे समर्पण से प्रयास किया कि वर्जीनिया अपनी रचनात्मक क्षमता को पूरी तरह अभिव्यक्त कर सकें। हां, एक काम वह नहीं कर सके। वह उन्हें बायपोलर डिप्रेशन से नहीं बचा सके। अंतिम पत्र में उन्होंने लियोनार्ड के प्रति गहरी कृतज्ञता व्यक्त करते हुए लिखा, "तुमने मेरे साथ असीम धैर्य रखा, मेरे प्रति अत्यंत उदार और अच्छे रहे। तुम हर उस रूप में मेरे साथ रहे, जैसा कोई मनुष्य हो सकता है। अब जब मुझसे सब कुछ छिन गया है, तब भी तुम्हारी अच्छाई पर मेरा विश्वास अडिग है।"

मन्नू भंडारी का संस्मरण 'दिस टू इज ए स्टोरी' पढ़ते समय मुझे बार-बार वर्जीनिया वूल्फ का यही विचार और उनका वैवाहिक जीवन याद आया। यह पुस्तक हाल ही में अंग्रेजी में प्रकाशित हुई है, जिसका अत्यंत संवेदनशील और कुशल अनुवाद पूनम सक्सेना ने किया है। मन्नू भंडारी का बचपन अजमेर में बीता। उनके पिता विद्वान और पुस्तकों के प्रेमी थे, जबकि मां पूरी तरह परिवार को समर्पित थीं। अपनी स्मृतियों में वह अपनी प्रारंभिक मार्गदर्शक, हिंदी अध्यापिका शीला अग्रवाल का अत्यंत आत्मीय उल्लेख करती हैं। शीला जी उन्हें पढ़ने के लिए पुस्तकें देती थीं और फिर उन पर विस्तार से चर्चा करती थीं। मन्नू भंडारी लिखती हैं, "शीला जी ने मुझे साहस दिया, आत्मविश्वास दिया, जीवन की दिशा दी और मेरे जीवन को अर्थ दिया।"

अपनी पहली प्रकाशित कहानी को याद करते हुए वह लिखती हैं, "किसी पत्रिका में अपनी पहली कहानी प्रकाशित देखना मेरे लिए रोमांच से भर देने वाला अनुभव था। उसके बाद जीवन में अनेक बड़ी घटनाएं हुईं, लेकिन वैसा रोमांच फिर कभी महसूस नहीं हुआ।"

जब मन्नू भंडारी कलकत्ता (अब कोलकाता) में रहती थीं, तब उन्हें प्रतिभाशाली लेखक राजेंद्र यादव से प्रेम हुआ। विवाह के तुरंत बाद ही राजेंद्र यादव ने उनसे कहा कि अब वे दोनों 'समानांतर जीवन' जीएंगे। उनका आशय था कि वे एक ही छत के नीचे तो रहेंगे, लेकिन दोनों का जीवन अलग और स्वतंत्र होगा। वे एक-दूसरे के निजी जीवन में हस्तक्षेप नहीं करेंगे। इस व्यवस्था के पीछे राजेंद्र यादव की अपनी सुविधाएं थीं। मन्नू भंडारी लिखती हैं कि उनका वैवाहिक जीवन पति के झूठ, छल और बेवफाइयों से भरा रहा। सबसे दुखद यह था कि राजेंद्र अपने व्यवहार को सही ठहराने के लिए कभी आधुनिकता का तर्क देते, कभी अपनी लेखकीय स्वतंत्रता का हवाला देते और कभी कोई ऐसा दार्शनिक तर्क गढ़ लेते, जिससे हर बार स्वयं को ही सही साबित कर सकें।

बाद में मन्नू भंडारी और राजेंद्र यादव दिल्ली आ गए, जो उस समय हिंदी साहित्य का प्रमुख केंद्र था। दोनों लगातार उपन्यास और कहानियां लिखते रहे और साहित्यिक पहचान अर्जित करते रहे। जब राजेंद्र यादव प्रतिष्ठित साहित्यिक पत्रिका हंस के संपादक बने, तब युवा लेखक बडी संख्या में उनके पास आने लगे, क्योंकि उनके पास साहित्यिक प्रतिष्ठा, प्रभाव और अवसर देने की शक्ति थी। इसके विपरीत मन्नू भंडारी के पास देने के लिए केवल अपनापन, स्नेह और प्रोत्साहन था। यह बात उन्हें बहुत नहीं खलती थी। उन्हें सबसे अधिक पीड़ा इस बात से होती थी कि पति परिवार के प्रति अपनी जिम्मेदारियों से लगातार मुंह मोड़ते रहे। वह कई बार तब भी घर से गायब रहे, जब मन्नू गंभीर रूप से बीमार थीं, और तब भी, जब उनकी छोटी बेटी अस्वस्थ थी।

मन्नू भंडारी निष्पक्षता के साथ यह भी स्वीकार करती हैं कि लेखक के रूप में राजेंद्र यादव ने उन्हें प्रेरित किया और प्रोत्साहित भी किया। उनके कारण उन्हें साहित्यिक वातावरण और महत्वपूर्ण गोष्ठियों से जुड़ने का अवसर मिला, जिसने उनके लेखन को समृद्ध किया। उनकी दोनों चर्चित कृतियों और अनेक कहानियों के शीर्षक भी राजेंद्र यादव ने ही सुझाए थे।

व्यंग्यपूर्ण शैली में मन्नू भंडारी लिखती हैं कि स्वयं को अत्यंत मौलिक समझने वाले राजेंद्र यादव की पत्नी के बारे में धारणाएं भी कम विचित्र नहीं थीं। उनके अनुसार, पत्नी का आदर्श रूप एक ऐसी नर्स का था, जिसका काम केवल पति की सेवा करना हो और बदले में किसी प्रकार की अपेक्षा न रखे।

संस्मरण के एक प्रसंग में मन्नू भंडारी एक गहरी सामाजिक विडंबना की ओर संकेत करती है। वह लिखती हैं, "जो लेखक अपने जीवन के सबसे सक्रिय वर्षों में अपनी रचनात्मक महत्वाकांक्षाओं के कारण अपनी पत्नियों की उपेक्षा करते रहते हैं, वही साठ वर्ष की आयु पार करते ही अचानक उन्हीं उपेक्षित पत्नियों को अपने जीवन की सबसे अपरिहार्य जरूरत मानने लगते हैं।" दोहरी मानसिकता पर वह लिखती हैं, "एक लेखक स्वयं को अत्यंत संवेदनशील आत्मा मानता है। वह डरे, दुखी और पीड़ित लोगों के लिए करुणा से भर उठता है। लेकिन जब बात अपनी पत्नी के दर्द की आती है, तो उसकी यही संवेदनशीलता कहां चली जाती है? वह न केवल पत्नी की पीड़ा को महसूस नहीं करता, बल्कि कई बार उसी पीड़ा का सबसे बड़ा कारण भी वही होता है।"

कई बार ऐसा हुआ जब मन्नू भंडारी अपनी सहनशक्ति की अंतिम सीमा तक पहुंच गईं और उन्होंने राजेंद्र यादव से अलग होने का निर्णय लिया। लेकिन हर बार बेटी का भविष्य और पति के बार-बार सुधर जाने के आश्वासन उन्हें रोक लेते थे। अंततः लगभग तीस वर्ष का वैवाहिक जीवन बिताने के बाद, जब यह पूरी तरह स्पष्ट हो गया कि राजेंद्र न तो बदल सकते हैं और न ही अपने व्यवहार में सुधार ला सकते हैं, तब मन्नू भंडारी ने उनसे अलग होने का अंतिम निर्णय ले लिया।

मन्नू भंडारी की यह आत्मकथा केवल एक लेखक दंपती के संबंधों का दस्तावेज नहीं है। यह उस पितृसत्तात्मक मानसिकता का भी साक्ष्य है, जो आधुनिकता का दावा तो करती है, लेकिन घर की चौखट पर पहुंचते ही उसके सारे आदर्श बदल जाते हैं। इस नजरिए से देखें तो वर्जीनिया वूल्फ मन्नू भंडारी की तुलना में अधिक सौभाग्यशाली थीं। वह केवल आर्थिक रूप से स्वतंत्र नहीं थीं, उन्हें लियोनार्ड वूल्फ जैसा जीवनसाथी भी मिला, जिसने उनकी प्रतिभा को पहचाना, उसका सम्मान किया और उसे विकसित होने का पूरा अवसर दिया। यदि दुनिया में अधिक पति लियोनार्ड जैसे होते, तो न केवल संसार अधिक सुखी होता, बल्कि साहित्य भी समृद्ध होता।

लोक की आवाज अब एक 'लोक कथा'

रघुवीर सिंह

कभी पूर्व प्रधानमंत्री इंदिरा गांधी ने कहा था- "आप बहुत अच्छा महाभारत करती हैं।" सामने खड़ी तीजन बाई ने जवाब दिया- "महाभारत नहीं करती हूं, महाभारत की कथा सुनाती हूं।" तीजन बाई के लिए पंडवानी गायन ही जिंदगी था। इस लोक विधा के लिए उन्होंने क्या नहीं सहा। बचपन में ताने सुने, समाज का तिरस्कार सहा और अंत में रूढ़िवादी पति को भी छोड़ना पड़ा, लेकिन उनकी कला खिली तो महाभारत की कथा भारत ही नहीं, दुनिया के कई देशों में गूंजी।

स्मरण

तीजन बाई
(1956-2026)

मशहूर निर्देशक श्याम बेनेगल ने तीजन बाई को अपने धारावाहिक 'भारत एक खोज' में महाभारत प्रसंग के लिए बुलाया था। इसके बाद तीजन बाई 'घर-घर' पहुंच गईं।

छत्तीसगढ़ के पाटन अटारी गांव में 8 अगस्त, 1956 को तीज पर्व के दिन जन्मीं तीजन का बचपन बहुत अभाव में गुजरा। पशु-पक्षियों के कलरव, मां सुखवती देवी के लोक गीतों की धुन और पिता हुनुकलाल पारधी की बांसुरी की तानें सुनते हुए वह बड़ी होने लगीं। नौ साल की उम्र में चचेरे नाना बृजलाल पारधी को पंडवानी गाते सुना तो उसी समय मन में उसे सीखने का निर्णय ले लिया। उसके बाद तेरह साल की उम्र में जो मंच पर उतरीं, तो जीवनपर्यंत पंडवानी में महाभारत की कथा सुनाती रहीं। मशहूर निर्देशक श्याम बेनेगल ने उन्हें 'भारत एक खोज' धारावाहिक में महाभारत प्रसंग के लिए बुलाया, तो तीजन बाई की कला घर-घर तक पहुंच गई। संगीत नाटक अकादमी, पद्मश्री, पद्मभूषण, पद्म विभूषण जैसे पुरस्कार उनकी झोली में गिरकर खुद को सम्मानित महसूस करने लगे।

आदिवासी जातियों के पंडवानी गायन की दो शैलियां प्रचलित हैं- वेदमती और कापालिक। पंडवानी पहले केवल पुरुष ही गाते थे और महिलाओं के लिए यह प्रतिबंधित था। पहली बार इसमें कदम रखने का साहस वेदमती शैली में लक्ष्मीबाई बंजारे ने किया, तो तीजन बाई ने यही काम कापालिक शैली में किया। तीजन बाई कापालिक शैली में पंडवानी गाने वाली पहली महिला बनीं।

तीजन बाई पूरी जिंदगी पंडवानी गायन में कथा तत्व और अभिनय पर काम करती रहीं। उनकी लय दक्षता, कथा स्मृति, अभिनय कुशलता और अनुभवों ने पंडवानी की कथा को प्रभावशाली बनाया। उनके गायन-अभिनय में कोमलता और वात्सल्य से लेकर हिंसा, प्रहार, अवसाद जैसे अनेक भाव दर्शकों को महाभारत काल में पहुंचा देते, तो मौजूदा सामाजिक-राजनीतिक हालात पर तीखी टिप्पणियां कथा के साथ-साथ चलती थीं।

कुछेक साल से सेहत ठीक न रहने से वह गुमसुम रहतीं, लेकिन पंडवानी की चर्चा चलती तो फूल की तरह खिल उठती थीं। गुजरी 5 जुलाई को वह सदा के लिए मौन हो गईं। एक बार उन्होंने कहा था, "जैसे बंदर का बच्चा अपनी मां को पकड़े रहता है, वैसे ही मैंने पंडवानी को पकड़ रखा है। पंडवानी ही मेरा बेड़ा पार लगाएगी।" सच है, तीजन बाई ने पंडवानी को लोकप्रिय बनाया और पंडवानी ने उन्हें अमर कर दिया।

इंडियन एक्सप्रेस समूह

जनसत्ता सरोकार | सम-सामयिक | एक

जनसत्ता | 12 जुलाई, 2026

पेट्रोल में एथेनाल मिलाने की नीति पर उठ रहे हैं चौतरफा सवाल
सरकार का तर्क, महंगे विदेशी ईंधन की जगह स्वदेशी विकल्प अपनाएं

पेट्रोल में एथेनाल सम्मिश्रण नीति को लेकर देश में छिड़ी बहस सड़कों से लेकर देश की सर्वोच्च अदालत और संसद के गलियारों तक पहुंच चुकी है। एक तरफ जहां आम उपभोक्ता, कार्यकर्ता और कुछ राजनेता इसे जनता की जेब पर अतिरिक्त आर्थिक बोझ और वाहनों की लंबी उम्र के साथ खिलवाड़ मान रहे हैं, वहीं दूसरी तरफ केंद्र सरकार, विशेषकर केंद्रीय सड़क परिवहन एवं राजमार्ग मंत्री नितिन गडकरी और पेट्रोलियम मंत्रालय, इसे भारत की ऊर्जा सुरक्षा, 22 लाख करोड़ रुपए के आयात बिल में कटौती और ग्रामीण अर्थव्यवस्था की समृद्धि का एक अचूक हथियार मान रहे हैं। पेट्रोलियम मंत्रालय ने यह स्वीकार किया है कि एथेनाल मिलाने से ईंधन की औसत गति में पांच फीसद की गिरावट आती है, लेकिन कहा कि गाड़ियों के इंजन पर कोई विपरीत असर नहीं पड़ता। अभी तक देश के राजनीतिक माहौल में डबल इंजन की धूम थी। डबल इंजन से डबल ईंधन तक के सफर पर सरोकार की पड़ताल।

डबल ईंधन

हाल ही में दिल्ली के जंतर-मंतर पर उपभोक्ताओं, कार्यकर्ताओं और आम वाहन मालिकों का जुटना इस बात का प्रमाण है कि भारत की ई20 (20 फीसद एथेनाल मिश्रित पेट्रोल) नीति को लेकर जनता के एक बड़े वर्ग में गहरा असंतोष है। इस विरोध प्रदर्शन का नेतृत्व करने वाले कार्यकर्ताओं और आलोचकों की शिकायतें मुख्य रूप से चार बिंदुओं पर केंद्रित हैं-

1-आलोचकों और पुराने वाहनों (विशेषकर साल 2020 से पहले निर्मित) के मालिकों का आरोप है कि ई20 पेट्रोल के निरंतर इस्तेमाल से गाड़ियों के इंजन समय से पहले खराब हो रहे हैं। एथेनाल रासायनिक रूप से एक हाइग्रोस्कोपिक पदार्थ है, जिसका अर्थ है कि यह पर्यावरण से नमी (पानी) को बहुत तेजी से सोखता है। जब ईंधन टैंक और पाइपलाइनों में पानी की मात्रा बढ़ती है, तो यह धातु के पुर्जों में जंग पैदा करता है। वाहन मालिकों का दावा है कि उनकी गाड़ियों की ईंधन प्रणालियों, कारबोरेटर, फ्यूल इंजेक्टर और इंजन के संवेदनशील आंतरिक हिस्सों में असामान्य घिसाव देखा जा रहा है। इसके अतिरिक्त, एथेनाल एक शक्तिशाली विलायक भी है, जो पुराने वाहनों में इस्तेमाल होने वाली रबड़ की पाइपों, वाशर और प्लास्टिक के पुर्जों को धीरे-धीरे गला देता है, जिससे ईंधन के रिसाव का खतरा बढ़ जाता है।

2-वाहन चालकों का सबसे बड़ा और सीधा दावा यह है कि जब से देश भर के पेट्रोल पंपों पर ई20 ईंधन को मानक स्तर बनाया गया है, तब से गाड़ियों का औसत काफी कम हो गया है। आम उपभोक्ताओं का कहना है कि उन्हें समान दूरी तय करने के लिए अब अधिक पेट्रोल खरीदना पड़ रहा है, जिससे मासिक बजट बिगड़ गया है। चूंकि देश में पेट्रोल की कीमतें पहले से ही उच्च स्तर पर बनी हुई हैं, ऐसे में औसत में गिरावट को जनता अपनी जेब पर एक परोक्ष कर के रूप में देख रही है। उपभोक्ताओं का तर्क है कि पर्यावरण सुधार की कीमत सीधे तौर पर उनके मासिक बजट से क्यों वसूली जा रही है?

> **सोशल** मीडिया और कुछ स्थानीय पर्यावरणविदों की रिपोर्ट में आरोप लगाया गया है कि एथेनाल बनाने वाले कारखानों से निकलने वाले अपशिष्ट के कारण स्थानीय स्तर पर भारी वायु और जल प्रदूषण हो रहा है।

3-प्रमुख नागरिक और उपभोक्ता अधिकार कार्यकर्ताओं, का तर्क है कि सरकार की यह नीति उपभोक्ताओं के बुनियादी अधिकारों का उल्लंघन करती है। कार्यकर्ताओं का कहना है कि सरकार को पेट्रोल पंपों पर सौ फीसद शुद्ध (बिना एथेनाल वाला) पेट्रोल या कम से कम कम सम्मिश्रण वाले ईंधन (जैसे ई10) का विकल्प भी समानांतर रूप से बनाए रखना चाहिए था। जब देश के सभी खुदरा केंद्रों पर केवल ई20 ईंधन ही उपलब्ध कराया जाएगा, तो उपभोक्ताओं के पास अपनी मर्जी का ईंधन चुनने का कोई विकल्प नहीं बचेगा। यह स्थिति उन लोगों के लिए बेहद दमनकारी है, जिनके पास पुराने वाहन हैं, और जो इनकी सुरक्षा के लिए शुद्ध पेट्रोल के लिए अतिरिक्त भुगतान करने को भी तैयार हैं।

4. इस नीति की तकनीकी और आर्थिक वैधता को चुनौती देते हुए भारत के सर्वोच्च न्यायालय (सुप्रीम कोर्ट) में एक जनहित याचिका भी दायर की गई। इसमें मांग की गई थी कि सरकार को देश भर के ईंधन खुदरा नेटवर्क में पुराने वाहनों के संरक्षण के लिए एथेनाल-मुक्त ईंधन का विकल्प देने का निर्देश दिया जाए। हालांकि, सुप्रीम कोर्ट ने इस याचिका को यह कहते हुए खारिज कर दिया कि यह एक नीतिगत मामला है और इसमें हस्तक्षेप करना उचित नहीं है। इस न्यायिक फैसले से सरकार की देशव्यापी ई20 नीति को कानूनी वैधता तो मिल गई, लेकिन जंतर-मंतर पर उमड़े जन-आक्रोश ने यह स्पष्ट कर दिया कि इस मुद्दे का सामाजिक समाधान अभी बाकी है।

5. पर्यावरण और भूजल से जुड़ी स्थानीय चिंताएं- विवाद का एक अन्य पहलू उन क्षेत्रों से जुड़ा है जहां एथेनाल उत्पादन की डिस्टिलरियां स्थापित हैं। सोशल मीडिया और कुछ स्थानीय पर्यावरणविदों की रिपोर्ट में आरोप लगाया गया है कि एथेनाल बनाने वाले कारखानों से निकलने वाले अपशिष्ट के कारण स्थानीय स्तर पर भारी वायु और जल प्रदूषण हो रहा है। कुछ क्षेत्रों में भूजल के दूषित होने की शिकायतें भी सामने आई हैं, जिससे कृषि और मानव स्वास्थ्य पर असर पड़ रहा है। हालांकि, इन आरोपों की व्यापक वैज्ञानिक पुष्टि होनी बाकी है, लेकिन इसने नीति के खिलाफ माहौल बनाने में मिश्रित ईंधन के विरोधियों की मदद की है।

सरकार ने एथेनाल नीति का किया बचाव- उपभोक्ताओं और कार्यकर्ताओं के इन गंभीर आरोपों के सामने केंद्र सरकार ने एक बेहद कड़ा और रक्षात्मक रुख अपनाया है। केंद्रीय सड़क परिवहन एवं राजमार्ग मंत्री नितिन गडकरी और पेट्रोलियम मंत्रालय ने इन शिकायतों को सिरे से खारिज करते हुए इसे एक बड़े राष्ट्रीय संकल्प का हिस्सा बताया है।

नितिन गडकरी ने इस पूरे विवाद को एक सुनियोजित झूठा और भुगतान आधारित प्रचार करार दिया है। गडकरी का सीधा आरोप है कि जैसे-जैसे भारत जैव-ईंधन को अपना रहा है और विदेशी कच्चे तेल पर अपनी निर्भरता कम कर रहा है, वैसे-वैसे अंतरराष्ट्रीय स्तर पर सक्रिय बड़ी तेल लाबी और उनके स्थानीय एजंट परेशान हो रहे हैं। गडकरी के अनुसार, यह कुछ ताकतों का धंधा बंद होने की छटपटाहट है, जो नहीं चाहती कि भारत ऊर्जा के क्षेत्र में आत्मनिर्भर बने। सोशल मीडिया पर वाहनों को हुए नुकसान की जो छिटपुट घटनाएं फैलाई जा रही हैं, वे पूरी तरह से अतिशयोक्तिपूर्ण हैं और एक सुनियोजित झूठी कहानी का हिस्सा हैं।

> **सरकार** के इस नीति पर अड़े रहने का सबसे बड़ा आर्थिक कारण देश का चालू खाता घाटा और विदेशी मुद्रा भंडार का संरक्षण है। भारत वर्तमान में ऊर्जा जरूरतों को पूरा करने के लिए सालाना 22 लाख करोड़ रुपए का कच्चा तेल आयात करता है।

उनका कहना है कि मुझे पूरे देश में एक भी ऐसी प्रामाणिक कार या बाइक दिखाई जाए जो केवल ई20 ईंधन के इस्तेमाल के कारण खराब हुई हो। उनका दावा है कि देश की किसी भी स्थापित और बड़ी वाहन निर्माता कंपनी ने एथेनाल के कारण इंजन टूटने या स्थायी रूप से विफल होने की पुष्टि नहीं की है। गडकरी ने स्पष्ट किया कि कई मामलों में जहां इंजन में खराबी के दावे किए गए थे, जब उन गाड़ियों के ईंधन टैंकों की गहन जांच की गई, तो वहां एथेनाल नहीं बल्कि स्थानीय स्तर पर की गई अन्य मिलावट को जिम्मेदार पाया गया।

सरकार के इस नीति पर अड़े रहने का सबसे बड़ा आर्थिक कारण देश का चालू खाता घाटा और विदेशी मुद्रा भंडार का संरक्षण है। भारत वर्तमान में अपनी ऊर्जा जरूरतों को पूरा करने के लिए सालाना लगभग 22 लाख करोड़ रुपए का जीवाश्म ईंधन (कच्चा तेल) आयात करता है। यह विशाल धनराशि देश के आर्थिक संसाधनों पर एक बहुत बड़ा बोझ है। सरकार का गणित सीधा है, यदि देश भर में पेट्रोल में 20 फीसद एथेनाल मिलाया जाता है, तो देश के तेल आयात शुल्क में सीधे तौर पर 20 फीसद की कमी लाने का मार्ग प्रशस्त होगा।

एथेनाल का उत्पादन मुख्य रूप से गन्ने के रस, भारी शीरे, क्षतिग्रस्त या अतिरिक्त अनाज और मक्के से होता है। सरकार का तर्क है कि जो पैसा पहले खाड़ी देशों के तेल कुओं के मालिकों की जेब में जाता था, वह अब इस नीति के कारण सीधे देश के किसानों, ग्रामीण सहकारी समितियों और स्थानीय डिस्टिलरी उद्यमियों के खातों में जा रहा है। इससे किसानों की आमदनी में वृद्धि हो रही है, उन्हें अपनी फसलों का बेहतर और सुनिश्चित मूल्य मिल रहा है, और ग्रामीण भारत में बड़े पैमाने पर नए रोजगार के अवसरों का सृजन हो रहा है। सरकार के लिए यह नीति केवल एक ईंधन नीति नहीं, बल्कि एक व्यापक ग्रामीण विकास माडल है।

प्रस्तुति : संजय शर्मा

ब्राजील बन सकता है भारत का मार्गदर्शक

जनसत्ता सरोकार

ब्राजील कोई नया एथेनाल उपयोगकर्ता नहीं है; वह 1970 के दशक से ही पेट्रोल में एथेनाल मिला रहा है। वर्तमान में ब्राजील में बेचे जाने वाले सभी गैसोलीन (पेट्रोल) में 30 फीसद से 32 फीसद (ई30-ई32) तक निर्जल एथेनाल का मिश्रण कानूनी रूप से अनिवार्य है। इस उच्च सम्मिश्रण स्तर के कारण ब्राजील ने खुद को वैश्विक कच्चे तेल की कीमतों में होने वाले उतार-चढ़ाव और भू-राजनीतिक तनावों (जैसे खाड़ी देशों के युद्ध) से पूरी तरह सुरक्षित कर लिया है। ब्राजील का कुल वार्षिक एथेनाल उत्पादन लगभग 37 अरब लीटर तक पहुंच गया है, जिसका 70 फीसद से अधिक हिस्सा गन्ने से और शेष तेजी से बढ़ते मक्का आधारित स्रोतों से प्राप्त होता है।

फ्लेक्स-फ्यूल वाहनों का प्रभुत्व और उपभोक्ताओं की आजादीः

ब्राजील माडल की सबसे खूबसूरत विशेषता जो उपभोक्ताओं की शिकायतों का स्थायी समाधान करती है, वह है वहां की फ्लेक्स-फ्यूल वाहन तकनीक। आज ब्राजील की सड़कों पर चलने वाली लगभग 80 फीसद कारें फ्लेक्स-फ्यूल इंजन से युक्त हैं। फ्लेक्स-फ्यूल इंजन के भीतर लगे विशेष सेंसर ईंधन की प्रकृति को पहचान लेते हैं। यह तकनीक चालकों को यह पूर्ण स्वतंत्रता देती है कि वे पेट्रोल पंप पर जाकर अपनी मर्जी और जेब के अनुसार ईंधन चुन सकेंः-

चालक चाहें तो अपनी गाड़ी में 100 फीसद शुद्ध एथेनाल (ई100) भरवा सकते हैं। या वे पंप पर उपलब्ध किसी भी गैसोलीन-एथेनाल सम्मिश्रण (ई30) को चुन सकते हैं। यह निर्णय पूरी तरह से इस बात पर निर्भर करता है कि उस विशेष दिन पेट्रोल पंप पर कौन सा ईंधन अधिक किफायती है।

ब्राजील की इस सफलता के पीछे उनके दशकों के निरंतर सरकारी कार्यक्रम रहे हैं। इसकी शुरुआत 1970 के दशक में प्रसिद्ध प्रोआल्कोल कार्यक्रम से हुई थी, जिसे आधुनिक युग में रेनोवाबायो पहल द्वारा और अधिक सुदृढ़ और आधुनिक बनाया गया है। इन कार्यक्रमों के तहत सरकार कर क्रेडिट, उत्पादन में भारी निवेश और सख्त डीकार्बोनाइजेशन लक्ष्यों के माध्यम से पूरे उद्योग को नीतिगत स्थिरता प्रदान करती है, जिससे निवेशकों, किसानों और उपभोक्ताओं तीनों का भरोसा व्यवस्था पर बना रहता है।

ब्राजील की तर्ज पर अब भारत में भी फ्लेक्स-फ्यूल इंजन तकनीक आ रही है। टाटा मोटर्स, महिंद्रा, हुंडई, टोयोटा किर्लोस्कर और मारुति सुजुकी सहित देश की कई प्रमुख वाहन निमार्ता कंपनियों ने अपने फ्लेक्स-फ्यूल माडल प्रदर्शित किए हैं। जब देश में फ्लेक्स-फ्यूल वाहन व्यापक रूप से उपलब्ध हो जाएंगे, तो माइलेज और इंजन खराब होने की समस्या पूरी तरह समाप्त हो जाएगी क्योंकि इन इंजनों के पुर्जे, धातु विज्ञान और फ्यूल लाइनें डिजाइन ही 100 फीसद एथेनाल को झेलने के लिए की जाती हैं।

जमीनी चुनौतियों को देखते हुए बहु-विकल्प प्रणाली संभव नहीं

जनसत्ता सरोकार

कार्यकर्ताओं और उपभोक्ताओं द्वारा बार-बार यह सवाल उठाया जा रहा है कि यदि सरकार ई20 को बढ़ावा देना चाहती है, तो वह उन लोगों के लिए जो शुद्ध पेट्रोल चाहते हैं, पेट्रोल पंपों पर अलग से विकल्प क्यों नहीं उपलब्ध कराती? कुछ विकसित देशों की तरह भारत के पेट्रोल पंपों पर भी शुद्ध पेट्रोल, ई10 और ई20 की अलग-अलग मशीनें क्यों नहीं लगाई जा सकतीं? पेट्रोलियम मंत्रालय ने अपने विस्तृत नोट में देश के ईंधन वितरण नेटवर्क की जमीनी वास्तविकताओं का हवाला देते हुए इस मांग को पूरी तरह से अव्यावहारिक और असंभव बताया है।

भारत में इस समय एक लाख से अधिक खुदरा पेट्रोल पंप संचालित हो रहे हैं। यह कोई छोटा नेटवर्क नहीं है। इस विशाल खुदरा नेटवर्क को पीछे से सहयोग देने के लिए तेल रिफाइनरी, विशाल टर्मिनल, भंडारण डिपो और हजारों किलोमीटर लंबी भूमिगत पाइपलाइनों का एक अत्यंत जटिल और एकीकृत बुनियादी ढांचा कार्य करता है। यदि सरकार प्रत्येक पेट्रोल पंप पर बेस पेट्रोल के तीन अलग-अलग ग्रेड (शुद्ध पेट्रोल, ई10 और ई20) बनाए रखने का निर्णय लेती है, तो इसके निम्नलिखित विनाशकारी परिणाम होंगेः-

रिफाइनरी से लेकर पेट्रोल पंप तक हर ईंधन प्रकार के लिए अलग परिवहन टैंक, अलग पाइपलाइन और अलग भंडारण टैंकों की आवश्यकता होगी। इतनी बड़ी आपूर्ति श्रृंखला में तीन अलग प्रकार के ईंधनों का पृथक्करण और परिवहन परिचालन करना एक दुःस्वप्न बन जाएगा।

पेट्रोल पंपों पर अतिरिक्त भूमिगत टैंक खोदने, नए पंप लगाने और आपूर्ति प्रणालियों को अद्यतन करने के लिए खुदरा डीलरों और तेल कंपनियों को लाखों करोड़ रुपए का अतिरिक्त निवेश करना होगा। इस अतिरिक्त निवेश का बोझ अंततः ईंधन की साज संभाल लागत को बढ़ा देगा, जिससे पेट्रोल की कीमतें और बढ़ जाएंगी।

परिचालन दक्षता में कमी : विभिन्न ग्रेड के रखरखाव से डिपो और पंपों पर ईंधन भरने, रखने और उसे निकालने की परिचालन दक्षता काफी कम हो जाएगी, जिससे देश भर में ईंधन की कृत्रिम किल्लत पैदा होने का खतरा बढ़ जाएगा। मंत्रालय ने तीखा सवाल उठाते हुए कहाः- यदि देश के पास एक स्वच्छ, त्वरित, उच्च

आक्टेन और कम प्रदूषणकारी स्वदेशी ईंधन (ई20) उपलब्ध है, तो हम राष्ट्रीय संसाधनों को बर्बाद करके जानबूझकर एक घटिया और महंगा विदेशी विकल्प (शुद्ध पेट्रोल) बनाए रखने के लिए अपनी पूरी व्यवस्था को जटिल क्यों करेंगे? पेट्रोलियम मंत्रालय ने अपने नोट में स्पष्ट किया है कि ई20 ईंधन को किसी अनुमान या राजनीतिक जल्दबाजी के आधार पर नहीं लाया गया है। इसे बाजार में उतारने से पहले आटोमोबाइल निर्माताओं, घटक आपूर्तिकर्ताओं, सरकारी परीक्षण एजंसियों और अनुसंधान संस्थानों के साथ एक कठोर और विस्तृत परामर्श प्रक्रिया अपनाई गई थी। आटोमोटिव रिसर्च एसोसिएशन आफ इंडिया (एआरएआइ) की प्रयोगशालाओं में इंजन की मजबूती, सामग्री अनुकूलता, जंग प्रतिरोध और उत्सर्जन प्रदर्शन को कवर करने वाले व्यापक मैदानी और प्रयोगशाला परीक्षण किए गए थे।

मंत्रालय का सबसे बड़ा तर्क यह है कि यदि आटोमोबाइल निर्माता इन वैज्ञानिक परीक्षणों के नतीजों से पूरी तरह संतुष्ट नहीं होते, तो वे कभी भी इस नीति का समर्थन नहीं करते और न ही बाजार में चल रहे अपने वाहनों की वारंटी का पालन करते। आज देश का हर छोटा-बड़ा वाहन निर्माता अपने वाहनों की वारंटी प्रतिबद्धताओं को पूरा कर रहा है क्योंकि वे इस वैज्ञानिक विकास प्रक्रिया का हिस्सा रहे हैं।

पहले की पुरानी कारों में ईंधन प्रणाली के भीतर कुछ जगहों पर धातु के वाशर लगे होते थे, जिन पर एथेनाल के नमी सोखने वाले गुण का असर हो सकता था। आधुनिक गाड़ियों में अब रबड़ और विशेष पालिमर के वाशर लगाए जा रहे हैं। गडकरी ने बताया, हमने सभी आटोमोबाइल कंपनियों और उनके अधिकृत सेवा केंद्रों को स्पष्ट निर्देश दिए हैं कि जब भी कोई पुरानी कार नियमित रखरखाव के लिए उनके पास आए, तो वे ग्राहक से बिना कोई अतिरिक्त शुल्क लिए उन पुराने धातु के वाशर को आधुनिक रबड़ वाशर से बदल दें। यह जमीनी सुधार यह सुनिश्चित करता है कि पुराने वाहनों को भी ई20 ईंधन से कोई तकनीकी खतरा न रहे।

हालांकि सरकार ने पुराने वाहनों की सामग्री अनुकूलता को लेकर पूरी तरह से आंखें नहीं मूंदी हैं। केंद्रीय मंत्री नितिन गडकरी ने स्पष्ट किया कि पुरानी कारों के कुछ संवेदनशील हिस्सों में सामग्री अनुपालन को बेहतर बनाने के लिए सरकार ने वाहन निर्माताओं को विशिष्ट सुधारात्मक निर्देश दिए हैं।

उपभोक्ताओं के मन में बैठे संशयों और ईंधन दक्षता की चिंताओं को वैज्ञानिक आधार पर दूर करने के लिए पेट्रोलयम और प्राकृतिक गैस मंत्रालय ने अक्सर पूछे जाने वाले प्रश्नों का एक विस्तृत नोट जारी किया है। मंत्रालय ने इस बात को स्वीकार किया है कि माइलेज पर तीन से पांच फीसद का प्रभाव पड़ता है, लेकिन इसके साथ मिलने वाले बड़े लाभों को नजरअंदाज नहीं किया जा सकता।

संवेदना की टूटती कड़ियां

समाज

मणिमाला शर्मा

> ऐसे कई बुजुर्ग हैं जिनके बच्चे विदेश में बसे हैं। उनका संपर्क केवल फोन और वीडियो काल तक सीमित रह गया है। कई मामलों में माता-पिता के अंतिम संस्कार में भी बेटे नहीं आते हैं और जिम्मेदारी पड़ोसियों या प्रशासन पर आ जाती है। कई बार तो शव को बच्चों के होते हुए भी लावारिस मान कर अंतिम संस्कार करना पड़ता है। जब युवा नौकरी करने बाहर जाते हैं, तो उनके मां-बाप अकेले रह जाते हैं।

आधुनिकता और तेज आर्थिक विकास के जिस दौर को हम प्रगति मान कर आगे बढ़ रहे हैं, उसके भीतर एक ऐसी सच्चाई लगातार गहराती जा रही है, जिसे अक्सर घरों की दीवारों के पीछे दबा दिया जाता है। यह सच्चाई है बुजुर्गों का बढ़ता अकेलापन, रिश्तों का टूटना और परिवारों के भीतर संवाद का खत्म होना। आज स्थिति यह है कि घर तो भरे हुए हैं, लेकिन मन खाली हैं। लोग मौजूद हैं, लेकिन रिश्तों में उपस्थिति नहीं है। तकनीक ने हमें जोड़ने का दावा किया था, लेकिन कई मामलों में उसने भावनात्मक दूरी और बढ़ा दी है। भारतीय समाज में संयुक्त परिवार लंबे समय तक सामाजिक सुरक्षा और भावनात्मक सहारा रहे हैं, लेकिन पिछले कुछ दशकों में यह संरचना तेजी से टूट रही है। शिक्षा, रोजगार और बेहतर जीवन की तलाश में युवा पीढ़ी का महानगरों और दूसरे देशों की ओर पलायन अब सामान्य प्रक्रिया बन चुका है। इसके साथ पीछे छूट रहे माता-पिता एक ऐसे जीवन में पहुंच रहे हैं, जहां दिन बिना संवाद के बीतता है और शाम उदासी में बदल जाती है।

खामोशी के कोने

इस संदर्भ में पिछले साल की एक रिपोर्ट के अनुसार 54 फीसद बुजुर्ग बढ़ती उम्र को नकारात्मक भावनाओं से जोड़ते हैं, जिनमें अकेलापन प्रमुख है। करीब 79 फीसद बुजुर्गों ने माना कि परिवारजन उनके साथ पर्याप्त समय नहीं बिताते हैं। यह स्थिति हमारे बदलते सामाजिक व्यवहार का संकेत हैं। दिन की रोशनी में तो जैसे-तैसे घर के छोटे-मोटे कामों या अतीत की खिड़कियों को ताकते हुए बुजुर्गों का वक्त कट जाता है, पर शाम ढलते ही उदासी गहराने लगती है। न कोई बात करने वाला होता है और न इनको पूछने वाला। इस अंतहीन खामोशी से घबरा कर कई बुजुर्ग खुद को बहलाने के लिए सोशल मीडिया का सहारा लेने लगे हैं। आए दिन फेसबुक और इंस्टाग्राम पर ऐसे वीडियो और रील दिख जाते हैं, जहां कोई बूढ़ी अंगुलियां कैमरे के सामने बचपना कर रही हैं या कोई कांपती आवाज में पुराना गीत गा रही हैं। पहली नजर में दुनिया इसे उनका 'डिजिटल शौक' मान कर 'लाइक' कर देती है, लेकिन कोई नहीं देखता कि उन रील के पीछे छिपा चेहरा असल में इंसानी आवाज सुनने के लिए कितना छटपटा रहा है। वे तकनीक के जरिए अपना मन तो बहला रहे हैं, लेकिन ऊपरी तौर पर दिखने वाला यह मनोरंजन उनके अकेलेपन को रत्ती भर भी कम नहीं कर पाता।

अनजान अपने

महानगरों में एक ही इमारत में रहने वाले लोग भी अक्सर एक-दूसरे से अनजान रहते हैं। पड़ोस जो कभी सुरक्षा और संवाद का आधार था, अब कमजोर होता जा रहा है। कई मामलों में बुजुर्गों की मौत की जानकारी काफी देर से सामने आई। दिल्ली के द्वारका इलाके में 2024 में एक बुजुर्ग व्यक्ति की लाश उनके फ्लैट से कई दिनों बाद मिली। उनका बेटा विदेश में रहता था और उनका किसी से कोई संपर्क नहीं था। मुंबई के अंधेरी में वर्ष 2023 में एक बुजुर्ग महिला का कंकाल लगभग एक सप्ताह बाद उनके फ्लैट में उनके ही सोफे पर मिला था। उदाहरण के तौर पर उल्लिखित ये घटनाएं पुरानी हैं, लेकिन इस समस्या के एक जटिल आयाम का रूपक हैं। ऐसी कई घटनाएं सामने आ चुकी हैं। ये सभी उच्च मध्यवर्गीय परिवारों से थे और अच्छी सोसाइटियों में रहते थे। यह हमारे समाज की स्याह तस्वीर है।

आलीशान फ्लैटों के बंद कमरों में हफ्तों तक टेलीविजन चलता रहता है, स्क्रीन की चमक बिखरी रहती है, लेकिन उन कमरों से जिंदगी कब की जा चुकी होती है, इसका अंदाजा पड़ोसियों को तब होता है जब वहां से दुर्गंध आने लगती है। जब पुलिस दरवाजा तोड़ कर अंदर दाखिल होती है, तो अपनों की राह निहारती उन आंखों की जगह केवल एक कंकाल या सड़ चुका शव मिलता है। यह समाज में बढ़ते अकेलेपन की भयावह तस्वीर है जो किसी को दिखाई नहीं दे रही है।

सुविधाओं का दंश

आज ऐसे कई बुजुर्ग हैं जिनके बच्चे विदेश में बसे हैं। उनका संपर्क केवल फोन और वीडियो काल तक सीमित रह गया है। कई मामलों में माता-पिता के अंतिम संस्कार में भी बेटे नहीं आते हैं और जिम्मेदारी पड़ोसियों या प्रशासन पर आ जाती है। कई बार तो शव को बच्चों के होते हुए भी लावारिस मान कर अंतिम संस्कार करना पड़ता है। जब युवा नौकरी करने बाहर जाते हैं, तो उनके मां-बाप अकेले रह जाते हैं। ये युवा अपने माता-पिता को ढेर सारी सुविधाएं तो दे देते हैं, लेकिन उनके अकेलेपन का उनके पास कोई इलाज नहीं होता है। बुजुर्ग घरेलू सहायकों पर निर्भर हो जाते हैं, लेकिन अधिकांश मामलों में यह निर्भरता असुरक्षा में बदल जाती है। देश में आए दिन बुजुर्गों के साथ लूटपाट, हिंसा और हत्या जैसी घटनाएं इस बात के संकेत हैं कि अकेलापन अब केवल भावनात्मक नहीं, सामाजिक सुरक्षा का भी सवाल बन चुका है।

बुजुर्गों में अकेलेपन की एक और बड़ी वजह है। वह है, माता-पिता द्वारा संपत्ति बच्चों के नाम करना। इसके बाद कई मामलों में उनकी स्थिति बदल जाती है। कुछ बुजुर्ग घर के भीतर उपेक्षा का सामना करते हैं, तो कुछ को वृद्धाश्रम का सहारा लेना पड़ता है या बच्चे उनको जबरदस्ती वृद्धाश्रम में छोड़ देते हैं। वहीं दूसरी ओर लंबे समय तक अकेलापन बुजुर्गों में अवसाद, अनिद्रा और स्मृति संबंधी समस्याओं को बढ़ाता है। इस अकेलेपन से जो बीमारियां सबसे तेजी से पैर पसार रही हैं, उनमें सबसे गंभीर है- स्मृतिभ्रंश और अल्जाइमर। जब दिमाग को संवाद का सक्रिय वातावरण नहीं मिलता, तो मस्तिष्क की कोशिकाएं मरने लगती हैं। बुजुर्ग धीरे-धीरे अपनी याददाश्त, अपनों के नाम और यहां तक कि अपनी बुनियादी पहचान भी भूलने लगते हैं। यह अलगाव दवाओं से ठीक होने वाली बीमारी नहीं है, यह एक ऐसी खामोश दिमागी विकृति है, जिसे सिर्फ और सिर्फ आत्मीयता से ही रोका जा सकता है।

पहुंच से दूर

सरकार ने इससे निपटने के लिए योजनाएं शुरू की हैं, लेकिन उनकी पहुंच और प्रभाव सीमित हैं। कई बुजुर्ग इन सेवाओं तक पहुंच ही नहीं पाते। कागजों पर सरकार ने माता-पिता और वरिष्ठ नागरिकों के लिए भरण-पोषण तथा कल्याण अधिनियम बना रखा है। इसके तहत बच्चे यदि मां-बाप को प्रताड़ित करें, तो उन्हें संपत्ति से बेदखल किया जा सकता है। मगर सच्चाई निराशाजनक है। कोई भी लाचार और बीमार पिता अपने ही बच्चों के खिलाफ कोर्ट-कचहरी के चक्कर काटने की हिम्मत नहीं जुटा पाता। समाज के डर और ममता के कारण कानून सिर्फ फाइलों में दबा रह जाता है। रही बात राष्ट्रीय वृद्धावस्था पेंशन जैसी सरकारी योजनाओं की, तो कुछ सौ रुपयों की सरकारी मदद से आज के दौर में बुजुर्ग अपनी दवाइयों का खर्च भी नहीं उठा पाते। यह समस्या अब केवल शहरों तक सीमित नहीं है। गांवों में भी बुजुर्ग अकेले होते जा रहे हैं। संयुक्त परिवार टूट रहे हैं। मगर इस बात की ओर कोई भी ध्यान नहीं दे रहा है या यों कहें कि इस विकराल समस्या को देख कर भी सभी लोग इसे अनदेखा कर रहे हैं।

गुस्सा और शर्मिंदगी

वक्त की नब्ज

तवलीन सिंह

> बेटी बचाओ, बेटी पढ़ाओ। नारा अच्छा है, बहुत अच्छा है। अपने प्रधानमंत्री ने एक अरसा पहले यह नारा देश की बेटियों को दिया था और कई कोशिशें अपनी तरफ से की थीं यह साबित करने के लिए कि उनके दिल में देश की बेटियों के लिए कितना प्यार है, लेकिन वास्तव में प्यार जताना होता, तो प्रधानमंत्री ऐसी घटनाओं के खिलाफ अपनी आवाज तो कम से कम उठाते।

राजस्थान की एक बेटी की कहानी सुनकर पिछले सप्ताह मुझे दुख और गुस्से से ज्यादा शर्मिंदगी महसूस हुई। कैसा देश है हमारा कि एक बच्ची के साथ बत्तीस दरिंदों ने पांच दिनों तक बलात्कार किया और किसी को पता तक नहीं लगा। बच्ची को एक होटल से दूसरे होटल में ले जाया जाता था, फिर भी न शहर के शासकों को खबर हुई और न पुलिस को। कैसे? क्यों? बच्ची को आटो चालक ने अगवा करके किसी होटल मालिक को बेचा। उसने आगे कई और होटल मालिकों के हवाले बच्ची को किया और इंटरनेट पर उसकी फोटो डाल कर दरिंदों को आमंत्रित किया।

किसी तरह जब वह इस नरक से जान बचा कर भागी, तो उसका इतना बुरा हाल हो चुका था कि उसकी जान अस्पताल में भी कोई नहीं बचा सका। दरिंदों को पकड़ कर रस्सियों से बांध कर शहर की सड़कों पर पिटवाने की घटना तो चर्चा का विषय बनी, लेकिन आगे क्या होगा वह भी सुन लीजिए। उनको जेल भेजा जाएगा जरूर और जिनकी थोड़ी बहुत पहुंच है, उनकी जमानत भी शायद हो जाएगी। उसके बाद कई साल उन पर मुकदमा चलेगा। इतने साल गुजर जाएंगे कि दुनिया भूल जाएगी कि उनका अपराध क्या था। क्या आप जानते हैं कि उस बच्ची के बलात्कारियों के साथ क्या हुआ था, जिन्होंने उस मासूम को जम्मू के एक मंदिर में बेहोश कर उससे बलात्कार किया था और जब मरने वाली थी, तो उसे मार डाला उसका सिर फोड़ कर? दंडित हुए भी हैं क्या? कोई नहीं जानता, क्योंकि उस बच्ची की कहानी हम बहुत पहले भूल चुके हैं।

राजस्थान की इस बच्ची की कहानी सुन कर कई नेता-अभिनेता दुख व्यक्त कर चुके हैं सोशल मीडिया पर, बिल्कुल वैसे जैसे जम्मू की उस छोटी-सी बच्ची की कहानी सुन कर हुआ था। दुख व्यक्त करने वाले हमारे देश में बहुत सारे लोग हैं, लेकिन इस किस्म के घिनौने अपराधों को रोकने के लिए ठोस कदम उठाने के लिए बहुत कम लोग सामने आते हैं। क्यों नहीं दुख व्यक्त करने वाले ये लोग दबाव डालते हैं हमारे शासकों पर कि जब बच्चियों के साथ ऐसा होता है, तो खास अदालतों में मुकदमा चलना चाहिए, ताकि दशकों तक मुकदमा चलता न रहे? क्यों नहीं ऊंची आवाज में कहते हैं कि भारत का सिर शर्म से झुक जाना चाहिए कि रोज इस देश में बलात्कार के मामले दर्ज होते हैं। हर साल 31 हजार मामले दर्ज होते हैं, लेकिन जब अदालतों तक बात पहुंचती है, तो केवल 30 फीसद बलात्कारी दंडित होते हैं।

ऐसा क्यों है? यह सवाल हमको बार-बार पूछना चाहिए अपने राजनेताओं से, लेकिन हम इसलिए पूछते नहीं हैं, क्योंकि हम जानते हैं कि इन लोगों को ऐसी बातों की कोई परवाह नहीं है। उनका ध्यान रहता है बड़ी-बड़ी चीजों पर जैसे कि संसद में महिलाओं के लिए सीटों को आरक्षित करना। जैसे महिलाओं के वोट बटोरने के लिए उनको हर महीने पंद्रह सौ से दो हजार रुपए दिलवाना, जैसे शहर की बसों में उनके लिए मुफ्त यात्रा का इंतजाम करना, लेकिन जब हमारे देश में किसी शर्मनाक घटना के बारे में जानकारी मिलती है, तो हमारे नेता अपने बिलों में घुस जाते हैं, ताकि उनके पास कोई शिकायत लेकर न आए। लोकसभा के अंदर कुछ महिला सांसद हैं जो आवाज उठाती हैं जब कोई बहुत ही शर्मनाक घटना घटती है, लेकिन उसके बाद कभी नहीं मालूम करने की कोशिश करती हैं कि न्याय हुआ है उस बच्ची के साथ या नहीं?

बेटी बचाओ, बेटी पढ़ाओ। नारा अच्छा है, बहुत अच्छा है। अपने प्रधानमंत्री ने एक अरसा पहले यह नारा देश की बेटियों को दिया था और कई कोशिशें अपनी तरफ से की थीं यह साबित करने के लिए कि उनके दिल में देश की बेटियों के लिए कितना प्यार है, लेकिन वास्तव में प्यार जताना होता, तो प्रधानमंत्री ऐसी घटनाओं के खिलाफ अपनी आवाज तो कम से कम उठाते। राजस्थान में भारतीय जनता पार्टी की सरकार है। इसलिए इतना तो हो सकता है न कि मुख्यमंत्री अपनी आवाज उठाएं।

सच यह है कि बलात्कार भी राजनीतिक लिबास पहने हुए है। जब कोई घटना घटती है किसी कांग्रेस शासित राज्य में, तो भाजपाई खूब हल्ला मचाते हैं और जब भाजपा शासित राज्यों में ऐसी घटनाएं होती हैं, तो हल्ला बोलते हैं कांग्रेस के लोग। इन नेताओं के आंसू घड़ियाली न होते, तो देश की बेटियों की किस्मत इतनी बुरी न होती। दरिंदों को रोकना है, तो सामाजिक स्तर पर काम होना जरूरी है और कानूनी स्तर पर भी। ये सारी चीजें तब होने लगेंगी, जब राजनेता नेतृत्व दिखाएंगे। राजस्थान की उस बेटी के आंसू पोंछने चिराग पासवान पहुंचे थे, लेकिन अक्सर इतना भी हमारे नेता नहीं करते हैं। नतीजा यह कि पुलिस-प्रशासन को संदेश यही जाता है कि जिस सुस्ती से न्याय होता है देश में वैसे ही चलता रहे।

और हम मीडियाकर्मियों ने इतनी बार इस तरह की शर्मनाक घटनाएं देखी हैं कि आदत डाल ली है इनको अनदेखा करने की। आखिर कितनी बार हम वही कहानी कहते रहेंगे? फलाने शहर में फलाने लोगों ने एक मासूम के साथ इतनी बार बलात्कार किया कि वह मर गई। मीडिया की तरफ से मैं माफी मांगने के लिए तैयार हूं, लेकिन इससे आगे क्या कर सकती हूं अलावा इसके कि जब भी ऐसी घटनाएं सामने आएंगी, मैं उनके बारे में विस्तार से लिखूंगी, ताकि आपके दिलों में भी थोड़ा दर्द, थोड़ी शर्म और बहुत ज्यादा गुस्सा आए। इतना गुस्सा कि हम सब मिल कर इस देश की बेटियों की आवाज बन जाएं और अपने शासकों को याद दिलाएं कि सभ्य देशों में ऐसी चीजें नहीं होती हैं।

विचारों का फलक

संदर्भ

राकेश सिन्हा

> किसी भी विचार को उपयोगी बनाए रखना अपनी सोच और भूमिका का फलक बढ़ाना होता है। विचारों में रूढ़िवादिता उसको धीरे-धीरे कमजोर करती है। वैचारिक अस्पृश्यता स्व-विकास को रोकती है। भारत के कम्युनिस्ट समकालीन विचारधाराओं से तो दूर रहे ही, अपनी सभ्यता की विरासत के साथ अनुभव लेने से भी भागते रहे। यह और बात है कि उनके आलोचकों ने भी वैचारिक असामाजिकता को अपना लिया।

भारत में वामपंथ का शताब्दी वर्ष बिना किसी विमर्श के बीत गया। जो वामपंथी दल बात-बात पर दस्तावेज प्रकाशित करते थे, आज उनकी बौद्धिकता पर सन्नाटा छाया हुआ है। एक समय था, जब बीटी रणादिवे, भूपेश गुप्ता, पी सुंदरैया, ईएमएस नंबूदरीपाद, हरकिशन सिंह सुरजीत जैसे वाम नेताओं की लेखनी विमर्श को इस हद तक प्रभावित करती थी कि सत्ताधारी दल (कांग्रेस) को उसमें कूदने के लिए बाध्य होना पड़ता था। छोटी-छोटी घटनाओं पर भी सौ दस्तावेज आ जाते थे। इसके दो उदाहरण हैं- मानवेंद्र राय पहले और अंतिम मार्क्सवादी थे, जिन्होंने दुनिया के वाम आंदोलन में अपनी जगह बनाई। वे सोवियत संघ की कम्युनिस्ट पार्टी के सर्वोच्च नेता लेनिन को वैचारिक जवाब देने की पात्रता रखते थे। इसी क्रम में लेनिन की नापसंदगी हुई और वे रातों-रात 'प्रतिक्रियावादी' घोषित हो गए। जब वे लौटकर भारत आए, तो उनके समर्थन एवं विरोध में सैकड़ों दस्तावेज लिखे गए। दूसरी घटना है वर्ष 1962 की, जब भारत-चीन युद्ध को लेकर कम्युनिस्ट पार्टी में 'कौन गलत कौन सही' के सवाल पर दंगल हुआ। चीन की पक्षधरता को लेकर पार्टी के विचारक एक-दूसरे के आमने-सामने थे। इस पर दस्तावेजों की भरमार लग गई।

वर्ष 2025-26 वैचारिक-संगठनात्मक-चुनावी गिरावट पर गौर करने का अवसर था, जो अंधेरे में खो गया। जो बात वर्ष 1978 में मार्क्सवादी कम्युनिस्ट पार्टी ने बंगाल के सालकिया की बैठक में की थी, उसे दोहराने का नैतिक साहस अब उसमें शायद नहीं बचा है। तब पार्टी ने आत्मालोचन किया था और अपनी गिरावट के लिए तीन कारणों को रेखांकित किया था, जिसमें एक सार्वजनिक विमर्श के लिए उपयोगी था, जबकि दो अन्य पार्टी की संगठनात्मक कमजोरी से जुड़े थे। यह था 'बुर्जुआ अवगुणों' का पार्टी में समावेश। इसका अर्थ बताया गया कि भाई-भतीजावाद, भ्रष्टाचार, संसाधनों को एकत्रित करने की लालसा और व्यक्तिवादी प्रवृत्ति का पार्टी की संस्कृति में संक्रमण। तब और अब में कितना अंतर आ गया है। आज पार्टी केरल के पूर्व मुख्यमंत्री पिनरई विजयन के परिवार के कथित भ्रष्टाचार के आरोप पर उनके समर्थन में सड़कों पर है।

इस प्रदर्शन को राजनीतिक बचाव कहा जा सकता है। जब राजनीति और सामाजिक जीवन में मूल्यों का सामूहिक क्षरण होता है, तब वित्तीय अनियमितताओं, अनैतिक आचरणों और कुसंस्कृति के प्रत्यक्ष उदाहरणों को सार्वजनिक रूप से सही बताना पुरुषार्थ बन जाता है। और ऐसे पुरुषार्थी ही पुरस्कृत किए जाते हैं। यह तब होता है, जब शेष समाज अपने आपको तमाशबीन बना लेता है। ऐसे समय में विचार, दर्शन और मूल्यों की बात करना असंतुष्ट घोषित होने का जोखिम उठाना होता है। वामपंथ में इस जोखिम को उठाने वाले कभी बहुतायत में होते थे, वे अब नहीं दिखते। जनसंघ के सिद्धांतकार पंडित दीनदयाल उपाध्याय ने वर्ष 1967 में पार्टी के कालीकट अधिवेशन में भारत के कम्युनिस्टों को आलोचनात्मक सुझाव दिया था। उन्होंने कहा था कि समानता की लड़ाई किसी का एकाधिकार नहीं है। उन्होंने वामपंथियों के भीतर विदेशज से देशज बनने की इच्छाशक्ति का अभाव बताया था। तब वामपंथी इस आलोचना को नजरअंदाज कर गए।

वामपंथी मार्क्स के दर्शन को मानने के लिए स्वतंत्र थे और हैं, मगर उन्होंने भारतीय विचारों को अस्पृश्य बनाकर रखा। सिर्फ भारत का विचार है, इसलिए उसे मानने की बाध्यता नहीं हो सकती है। बाध्यता का कारण उसकी सर्वकालिक उपयोगिता है। भारतीय दर्शन की एक विशिष्टता, जो इसे पाश्चात्य से अलग करता है, वह है इसमें भौतिकता का महिमामंडन नहीं है। धन अर्जन और भौतिक चमक-दमक के जीवन दर्शन में नैतिक-अनैतिक का अंतर समाप्त होना स्वाभाविक है। भारत की दार्शनिक मैत्रेयी ने ऋषि याज्ञवल्क्य से जो प्रश्न किया था, वह सामंतवाद, पूंजीवाद, नवउदारवाद सभी व्यवस्थाओं की जन्मजात न्यूनताओं का समाधान है। मैत्रेयी ने पूछा था कि 'धन की प्रचुरता से क्या मन की संतुष्टि और जीवन की अमरता प्राप्त की जा सकती है?' वृहदारण्यक और छांदोग्य उपनिषदों में यह संवाद मनुष्य को धन संग्रह की प्रवृत्ति से बचाने का व्यावहारिक एवं दार्शनिक संदेश है। ऐसे तो गैर-वामपंथी भी उसे उद्धृत कर अपना काम पूरा मान लेते हैं, मगर वामपंथियों के लिए उसका नाम लेना भी साम्यवाद से भटकाव हो जाता है।

समानता और सृष्टि का पोषण, दोनों बातें भारतीय दार्शनिक भारुची, तनका और गुहादेव आदि में भरपूर मिलती हैं। साम्यवादियों ने उसको जानने की जरूरत तक महसूस नहीं की। किसी भी विचार को उपयोगी बनाए रखना अपनी सोच और भूमिका का फलक बढ़ाना होता है। विचारों में रूढ़िवादिता उसको धीरे-धीरे कमजोर करती है। दूसरा, वैचारिक अस्पृश्यता स्व-विकास को रोकती है। एक ही तरह की बात एक ही जैसे लोगों से लगातार सुनने से आलोचनात्मक सृजन की ताकत का क्षरण हो जाता है। भारत के कम्युनिस्ट समकालीन विचारधाराओं से तो दूर रहे ही, अपनी सभ्यता की विरासत के साथ अनुभव लेने से भी भागते रहे। यह और बात है कि उनके आलोचकों ने भी वैचारिक असामाजिकता को अपना लिया। अब एक-दूसरे से वैचारिक संसाधनों को लेना गुनाह बन गया है। भारतीय वैचारिक क्षितिज का यह सबसे घातक पहलू बन गया है। नवउदारवाद के खिलाफ कम्युनिस्ट और गैर-कम्युनिस्ट दोनों हैं, पर विचारों की न्यूनतम साझेदारी नहीं है। नवउदारवाद ने धन सृजन और संग्रह को ही सब कुछ मान लिया। फलस्वरूप धन का विकेंद्रीकरण एक समानता एवं आर्थिक नैतिकता और गैर-विकासवादी अवधारणा के रूप में निंदित होने लगा है। इस विडंबना से बाहर निकलने के लिए मार्क्स से अधिक मैत्रेयी की सार्थकता है। मगर उनकी विरासत का बोझ ऐसा करने से रोकता है। यही उनके बीच बौद्धिक सन्नाटे का कारण भी है।

चोर मचाए शोर

बाखबर

सुधीश पचौरी

> विपक्ष के सतत हमलों के आगे कई एंकर जो अक्सर 'भक्तों' का पक्ष लेते रहे हैं, अब खुद पूछने लगे हैं कि बड़ी मछली को क्यों बचाया जा रहा है? उन पर प्राथमिकी दर्ज क्यों नहीं की जा रही? उन्हें अंदर क्यों नहीं किया जा रहा? सुप्रीम कोर्ट स्वत: संज्ञान क्यों नहीं ले रहा?

'जब समझौता करना था, तो हमला क्यों?' लीजिए, अमेरिका-ईरान 'युद्धविराम' गया तेल लेने। होर्मुज फिर जाम। तेल के चढ़े दाम और दुनिया के बाजार धड़ाम। इस बीच अंकल सैम 'विश्वकप' भी खेल आए। रेफरी ने दिखाया एक अमेरिकी खिलाड़ी को 'लाल कार्ड', तो अंकल जी ने अपने रुतबे से उसे वापस करा दिया! अब करते रहो हाय-हाय!

अयोध्या का 'चढ़ावा चोरी कांड' पीछा नहीं छोड़ रहा और अब तो चैनलों में कोरस-सा उठता दिखता है कि बड़ी मछलियां कब अंदर जाएंगी? गजब का 'चढ़ावा चोरी कांड' है, जिसे हुए इतने दिन हो गए, लेकिन अब तक नहीं मालूम कि कुल कितने की चोरी हुई है, क्योंकि किसी के पास रिकार्ड नहीं कि हर रोज कितना चढ़ावा आता था। कोई कहता है कि दो हजार करोड़ की चोरी हुई, कोई कहता है चार हजार करोड़ की चोरी हुई, कोई छह हजार करोड़ बताता है।

बचाव पक्ष के एक बाबा कहिन- निचले कर्मचारियों ने चोरी की। आठ पकड़े गए, बाकी की खोज विशेष जांच दल कर रहा है। चाहे कोई हो, किसी को बख्शा नहीं जाएगा। जल्द ही 'दूध का दूध और पानी का पानी' होगा। मगर जब दूध के नाम पर पानी ही पानी हो, तो दूध कैसे अलग होगा? इसे देख हमें तो सर्वेश्वर दयाल सक्सेना की यह कविता याद आती है- 'पहले दाल में कुछ काला था, अब काले में दाल है/ सारी दुनिया जीम रही है, हमको यही मलाल है!'

किस शीर्ष 'ट्रस्टी' की नाक के नीचे ये सब हुआ? वह क्या कर रहा था? उसे भी क्यों न अपराध का हिस्सेदार माना जाए? उस पर अब तक प्राथमिकी क्यों नहीं? उसे क्यों नहीं गिरफ्तार किया जा रहा? कौन बचा रहा है उसे? हजार सवाल और संतोषजनक उत्तर एक नहीं! एक बचाव पक्ष के बाबा- सब जानते हैं वे पहुंचे हुए भक्त हैं। जीवन खपा दिया है मंदिर के लिए... वे ऐसा अनर्थ नहीं कर सकते..!

आप किसी की गारंटी कैसे ले सकते हैं? ये कैसा तर्क हुआ? जिसकी देख-रेख में सब हुआ, उसे निर्दोष कैसे माना जाए? पक्ष के भक्त- जो राम का अस्तित्व तक नहीं मानते थे, आज राम का नाम ले रहे हैं... वही जांच की मांग कर रहे हैं..! विपक्षी भक्त- हम भी राम भक्त है। हमें हक है कि हम जांच की माग करें और मंदिर का नाम बदनाम करने वालों को सजा दिलाएं। पक्ष के भक्त- ये तो 'कल के भक्त' हैं... असली भक्त वे थे, जिन्होंने राम मंदिर के लिए पांच सौ साल लंबा संघर्ष चलाया और कुर्बानियां दीं..! एक और भक्त- एक होता है जानबूझ कर किया अपराध, एक होता है अनजाने में हुआ अपराध। फिर उन्हीं ने तो पहले खबर दी कि चोरी हुई है..! विपक्षी भक्त- लेकिन बिना जांच के कैसे तय कर सकते हैं कि किसी के 'अनजाने' सब हुआ..! उन्होंने 'एसआइटी' बिठाई, 'एफआइआर' क्यों नहीं की?

विपक्ष के सतत हमलों के आगे कई एंकर जो अक्सर 'भक्तों' का पक्ष लेते रहे हैं, अब खुद पूछने लगे हैं कि बड़ी मछली को क्यों बचाया जा रहा है? उन पर प्राथमिकी दर्ज क्यों नहीं की जा रही? उन्हें अंदर क्यों नहीं किया जा रहा? सुप्रीम कोर्ट स्वतः संज्ञान क्यों नहीं ले रहा?

एक भक्त ने कहा- भई ट्रस्ट स्वायत्त संस्था है, उसके नियम ही ऐसे हैं..! विपक्ष के एक नेता- नहीं, सरकार चाहे तो ट्रस्ट के नियम बदल सकती है। किसी भी ट्रस्ट को अपने मातहत कर सकती है। सरकार क्यों नहीं मंदिरों का प्रबंध अपने हाथ में ले लेती है? 'चौर्यकला' का यह 'सौंदर्यशास्त्र' है प्यारे कि चोरी होगी और चोर को चोर ही पकड़ेगा... क्योंकि 'चोर मचाए शोर'। अयोध्या का 'चौर्य कांड' खत्म नहीं हआ था कि 'बद्रीनाथ' से खबर आने लगी कि उधर भी एक 'चौर्य कांड' हुआ है और उत्तराखंड की सरकार ने तीन अधिकारियों की एक समिति जांच के लिए बिठा दी है।

फिर आया फिल्म 'सतलुज' को लेकर नया विवाद। फिल्म 'सतलुज' सेंसर की सनद के बाद दो दिन तक ओटीटी पर दर्शकों को उपलब्ध रही, फिर अचानक सरकार ने हटवा दिया और विवाद शुरू। सत्ता पक्ष कहिन कि ऐसी फिल्म से देश की सुरक्षा को खतरा हो सकता है... यह आतंकवादी हिंसा का 'महिमामंडन' करती है... पंजाब की समस्या को दिखाना है तो आतंकवाद का सारा इतिहास दिखाओ। यह पंजाब के इतिहास को बेहद 'चयनात्मक' तरीके से दिखाती है..! फिल्म के पक्ष में कई कहिन कि ये सिख धर्म में हस्तक्षेप की तरह है... कि फिल्म में सच्चाई दिखाई गई है... कि मैं जानता था कि ऐसा होगा, लेकिन ये रुकने वाली नहीं... कि आज की तकनीकी दुनिया में पाबंदी लगाने से कुछ नहीं होता। फिल्म और ज्यादा देखी जाती है।

इसी बीच प्रधानमंत्री इंडोनेशिया के सर्वोच्च सम्मान से 'सम्मानित' हुए, उधर उनके 'स्पर्धी जलने लगे! मगर 'मेटा' की शैतानियों को कोई क्या कहे कि उसके 'इंस्टाग्राम' ने सरकार द्वारा 'हटाने' की कहने पर भी बारह वर्ष की एक लड़की की 'प्रताड़ना' की तस्वीर नहीं हटाई। इसे देख एक एंकर ने तो लाइन ही दे दी कि 'क्रैश मेटा' यानी 'मेटा' को ध्वस्त करो। लेकिन 'मेटा' वाला फिर भी कहता रहा 'हम जिम्मेदार मंच हैं'!

इंडियन एक्सप्रेस समूह
जनसत्ता सरोकार
साहित्य
तीन
जनसत्ता | 12 जुलाई, 2026

मनोहर जी का शोक संदेश

प्रेमलता यदु

कहानी

सुबह-सुबह गर्मागर्म चाय की चुस्कियों के संग अखबार पढ़ना मनोहर जी के रोजमर्रा के काम में शामिल था। जिस दिन वे अखबार नहीं पढ़ते, उन्हें कुछ अधूरा सा अनुभव होता। साथ ही जिस प्रकार खाने की थाली में छप्पन भोग होने के बावजूद यदि अचार या चटकारेदार चटनी न हो तो खाना चटपटा या मजेदार नहीं लगता है, ठीक वैसे ही अखबार पढ़ते हुए मनोहर जी जब तक तीन-चार प्याली चाय नहीं गटक जाते हैं, उन्हें खबरें पढ़ने में मजा नहीं आता है। इसलिए उनकी धर्मपत्नी यमुना देवी उनकी आराम कुर्सी के बगल में रखे गोल स्टूल पर एक चाय से भरा थर्मस, पानी से भरा जग और तीन-चार चीनी मिट्टी के कप सुबह ही रख कर अपने काम में व्यस्त हो जाती हैं। उसके बाद न तो यमुना देवी मुड़ कर फिर मनोहर जी की ओर आतीं और न ही, घर का कोई सदस्य उनके पास आता। मनोहर जी भी अखबार और चाय के संग मस्त रहते, उन्हें भी घर में क्या चल रहा है इससे कोई लेना-देना नहीं रहता, वह तो बस अखबार में देश-विदेश की खबरों में खोए रहते।

सेवानिवृत्ति से पहले वह दफ्तर और अपने अन्य कार्यों में व्यस्त रहते थे। उनके पास घर-परिवार के लिए वक्त नहीं होता था और अब, परिवार वालों के पास उनके लिए वक्त नहीं है। यही जीवन चक्र है जो घूमते ही रहता है। जहां से शुरू होता है फिर वहीं आ जाता है। कहने को तो मनोहर जी जब से सेवानिवृत्त हुए हैं, घर पर ही सारा दिन रहते हैं, लेकिन न तो घर का कोई सदस्य उनसे कुछ बोलता-बतियाता है और न ही वह किसी से कुछ कहते हैं। केवल वक्त पर उन्हें उनकी पत्नी उनके स्थान पर ही भोजन-पानी दे जाती हैं।

वैसे मनोहर जी के दो बेटे, दो बहुएं और उनके बच्चे भी हैं। सभी साथ में एक ही छत के नीचे रहते हैं किंतु सभी अपने आप में व्यस्त हैं। मनोहर जी की घर पर उपस्थिति अदृश्य सदस्य की तरह है। उनका घर पर होना, न होना किसी के लिए कोई विशेष महत्त्व नहीं रखता है।

जब से मनोहर जी सेवानिवृत्त हुए हैं तभी से वे अखबार का कोई भी कोना नहीं छोड़ते है। अखबार में छपी हर एक खबर को पूरे विस्तार से पढ़ते हैं और फिर, उस पर मनन भी करते हैं। आजकल उनकी विशेष रुचि अखबार में तस्वीरों के संग छपने वाले शोक-संदेश के स्तंभ पर बहुत अधिक बढ़ गई है, जिसे वह कम से कम दो से तीन बार तो अवश्य पढ़ते हैं। पहले वे हर एक व्यक्ति का नाम पढ़ते हैं, फिर गौर से उनकी तस्वीरें देखते हैं कि कहीं कोई उनकी जान-पहचान का तो नहीं है। जब वे आश्वस्त हो जाते हैं कि उनका कोई परिचित नहीं है, तब वे मृत व्यक्ति के विषय पर लिखे गए शोक-संदेश को बड़े ध्यान

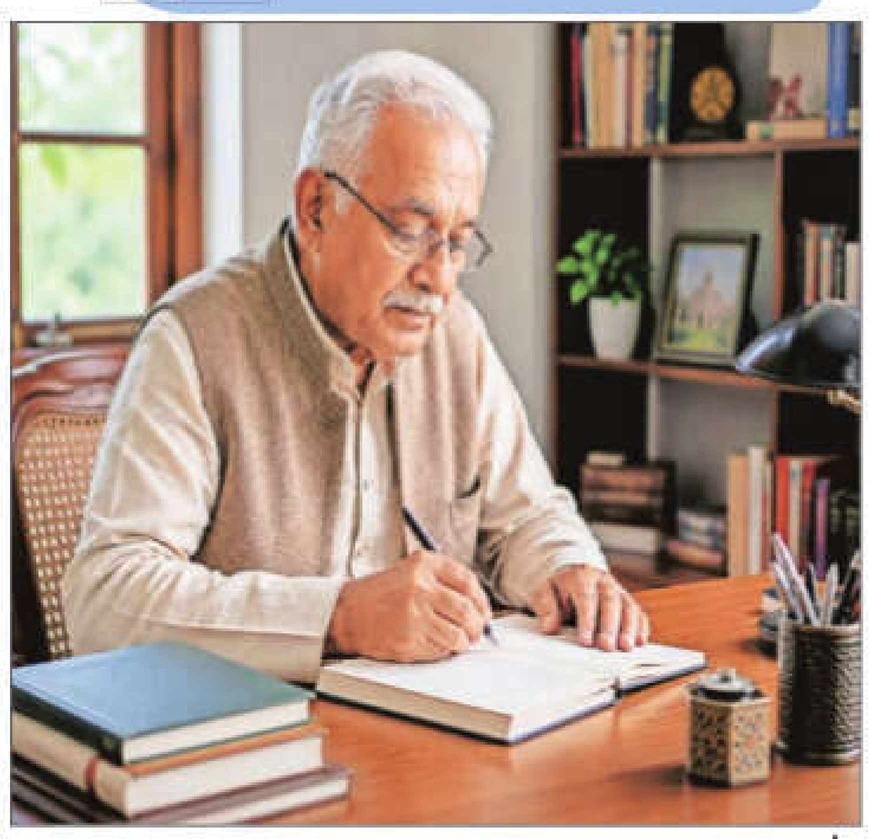

कमरे में जा कर उन्होंने अपनी एक अच्छी-सी तस्वीर एलबम से ढूंढ कर निकाली और उसे अपनी डायरी में सहेज कर रख दिया। डायरी में उन्होंने एक शोक-संदेश लिखा।

से पढ़ते हैं। पूरा शोक-संदेश पढ़ने के बाद खुद से ही प्रश्न करते हुए पूछते हैं कि क्या यह व्यक्ति ऐसा ही रहा होगा, जैसा उसके बारे में लिखा गया है...! क्या वाकई इस व्यक्ति में कोई ऐब नहीं रही होगी। अपने द्वारा किए गए इन प्रश्नों का उत्तर भी वे स्वयं ही स्वयं को देते हुए कहते हैं-शायद इसका स्वभाव ऐसा ही रहा होगा तभी तो शोक-संदेश पर लिखा गया है। हर रोज मनोहर जी काफी देर तक शोक संदेश के कालम में छपे हर व्यक्ति को एकटक देखते रहते हैं, फिर उस पर लिखे संदेश को पढ़ते हैं और अंत में न जाने क्या उनके मन में आता है, अखबार को बंद करके एक ओर रख देते हैं।

आज भी मनोहर जी अखबार में शोक-संदेश का स्तंभ पढ़ते हुए हर बार की तरह विचाराधीन मुद्रा में चले गए और मनन करने लगे कि आखिर किसी भी व्यक्ति की तारीफ उसके मरणोपरांत ही क्यों होती है...? क्या व्यक्ति की जीवित रहते हुए तारीफ नहीं हो सकती है...?, या फिर उसके परिवार, मित्रगण या रिश्तेदार उस व्यक्ति के गुण या विशेषताओं को उसके जीवित रहते पहचान ही नहीं पाते हैं। आखिर मरने के बाद आपके प्रति लोगों का नजरिया क्यों बदल जाता है? क्योंकि अब आपसे उनके किसी स्वार्थ की पूर्ति नहीं होनी है।

अब मनोहर जी शोक-स्तंभ के हर संदेश को ध्यान से पढ़ रहे थे। हर संदेश ऐसा ही लग रहा था कि उस व्यक्ति के न रहने से अब किसी और का जीवन कितना सूना हो गया है। जब घर में किसी की मौत होती होगी तो कौन तय करता होगा कि शोक-संदेश में क्या लिखवाना है। शोक-संदेश में किसी तरह की शिकायत क्यों नहीं शामिल रहती है? क्या किसी को किसी से शिकायत ही नहीं थी। फिर मनोहर जी ने एक और तुलना की। किसी के शोक-संदेश में बहुत अच्छी भाषा थी तो किसी के संदेश में सपाट भाषा थी। आपका शोक-संदेश दुनिया कैसे पढ़ेगी वह इस पर निर्भर करेगा कि उसे लिखवाया किसने।

ऐसे ही कई सवाल मनोहर जी के दिलो-दिमाग में समुद्र की लहरों की तरह उठने लगे। वे थोड़ी बेचैनी-सी महसूस करने लगे। अचानक उनके मन में विचार आया कि एक दिन वह भी तो इस दुनिया को अलविदा कह कर परलोक गमन कर जाएंगे और उनकी भी तस्वीर इस शोक-संदेश के स्तंभ में अवश्य छपेगी। यह विचार मन में आते ही मनोहर जी गहन चिंतन में डूब गए। थोड़ी देर चिंतन-मनन करने के उपरांत पहली बार अखबार पढ़ना बीच में ही छोड़ कर वे अपने कमरे में चले गए। कमरे में जा कर उन्होंने अपनी एक अच्छी-सी तस्वीर एलबम से ढूंढ कर निकाली और उसे अपनी डायरी में सहेज कर रख दिया। उसके बाद उसी डायरी में उन्होंने एक शोक-संदेश तैयार किया जिस पर उन्होंने संक्षिप्त में अपना परिचय, गुण, विशेषता और स्वभाव के बारे में लिखा। इतना सब करने के बाद उन्होंने उस डायरी को घर के ऐसे स्थान पर रख दिया जहां से घर का हर सदस्य उस डायरी को आसानी से देख सके।

सारा दिन मनोहर जी बैचेन रहे, उनका मन दोबारा अखबार पढ़ने का नहीं हुआ और न ही उन्होंने चाय पी। उनकी रात भी करवट बदलते हुए ही बीती। दूसरे दिन सुबह पहली बार यमुना देवी को मनोहर जी अखबार पढ़ते हुए नहीं मिले। उन्होंने इधर-उधर नजरें दौड़ाईं पर मनोहर जी कहीं नजर नहीं आए। अब यमुना देवी को थोड़ा अजीब सा लगा। मनोहर जी को ढूंढ़ते हुए जब यमुना देवी उनके कमरे में पहुंचीं तो उन्होंने देखा, मनोहर जी हमेशा के लिए फिर कभी ना लौटने वाली लंबी यात्रा के लिए जा चुके थे।

समय सूचक

हिंदी नवजागरण का बंगाली नायक

जनसत्ता सरोकार

आम तौर पर हम किसी प्रसिद्ध स्कूल या कालेज का नाम तो जानते हैं, पर उस स्कूल-कालेज की बुनियाद का पत्थर लगाने वालों के बारे में बहुत कम लोगों को पता होता है। सरस्वती एक ऐसी पत्रिका थी जिसे हम हिंदी साहित्य की पाठशाला या प्रयोगशाला कह सकते हैं। सरस्वती का नाम सुनते ही हमारे जेहन में पहला नाम महावीर प्रसाद द्विवेदी का आता है, जिनके संपादन में इस पत्रिका ने हिंदी साहित्य के पठन-पाठन को नया विस्तार दिया। द्विवेदी के हाथों में हिंदी की यह प्रयोगशाला सौंपने वाले थे चिंतामणि घोष। चिंतामणि घोष मूल रूप से बंगाली थे। उनका जन्म उन्नीसवीं सदी के मध्य में हुआ था। घोष की समझ थी कि भारत जैसे देश में साहित्य और विचारों के प्रसार के लिए उच्च गुणवत्ता वाले संस्थान जरूरी हैं। अपनी इसी सोच को आगे बढ़ाते हुए उन्होंने प्रयागराज में इंडियन प्रेस की स्थापना की। इंडियन प्रेस ने बेहतरीन छपाई, आकर्षक साज-सज्जा और सतर्क संपादन की परंपरा स्थापित की। इन तैयारियों के बाद घोष ने 1900 में हिंदी मासिक पत्रिका सरस्वती की शुरुआत की। सरस्वती ने हिंदी साहित्य में अपना मुकाम तब पाया जब घोष ने महावीर प्रसाद द्विवेदी की प्रतिभा को पहचान कर उन्हें इसका संपादक बनाया। घोष में प्रतिभाओं को पहचानने की अद्‌भुत क्षमता थी। उन्होंने अनेक लेखकों की पुस्तकें प्रकाशित करने के साथ हिंदी लेखन को आर्थिक आधार देने की कोशिश की। महावीर प्रसाद द्विवेदी, मैथिलीशरण गुप्त, रामचंद्र शुक्ल, अयोध्यासिंह उपाध्याय हरिऔध जैसे हिंदी के विद्वानों की कलम को घोष के प्रेस की स्याही ने खूब छापा। घोष का मानना था कि भारतीय भाषाओं के विकास के लिए मजबूत प्रकाशन संस्थाओं की आवश्यकता है। हिंदी साहित्य के इतिहास में आज भी इस बात का उल्लेख किया जाता है कि हिंदी नवजागरण की कहानी का नायक एक बंगाली है, जिसने लेखकों को पाठकों तक पहुंचाया।

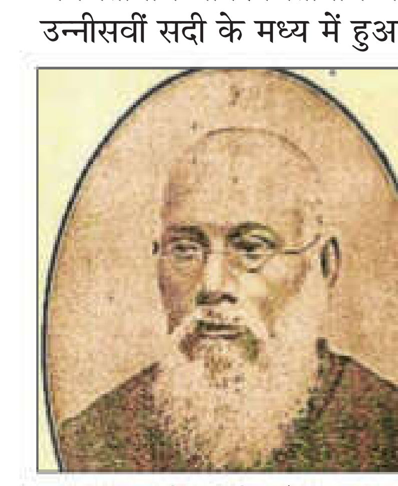

चिंतामणि घोष

दादा की खुशी

भगवती प्रसाद द्विवेदी

बाल कथा

जनवरी का महीना था। शीतलहर से आज थोड़ी बहुत राहत मिली थी। दादाजी धूप में बैठकर अखबार पढ़ रहे थे। सुमन ने आकर चाय की प्याली थमाई। मगर दादाजी ने कप को टेबल पर रख दिया। उनकी निगाह अखबार के एक ही पन्ने पर देर से टिकी हुई थी।

सुमन ने उनका ध्यान खींचते हुए कहा, 'दादाजी! आप तो चाय के बड़े शौकीन हैं। लेकिन आज आपने चाय की तरफ देखा तक नहीं। मैं कितनी अच्छी अदरक वाली चाय बनाकर लाई हूं और आप खोए हुए हैं। अखबार में कोई खास खबर है क्या?' 'हां बेटे! बहुत खास खबर है। तुम्हारी जैसी ही दो बेटियों की कहानी है।' दादाजी ने चाय की प्याली को उठाते हुए जवाब दिया। सुमन की जिज्ञासा बढ़ गई। उसने कौतूहल से पूछा, 'क्या किया उन दोनों ने? लुटेरों पर पिस्तौल तान दी क्या? बताओ तो भला! कितनी हिम्मत वाली हैं वे!'

'लगता है कि अब तुम्हारे अंदर भी भरपूर उत्सुकता जाग गई है। ठीक है, अब मैं तुम्हें पूरी कहानी ही सुना देता हूं। कल बुधवार की ही घटना है यह। अपने राज्य के हाजीपुर शहर में एक बैंक है-उत्तर बिहार क्षेत्रीय ग्रामीण बैंक। बैंक में ग्राहकों की काफी भीड़ थी। बाहर दरवाजे पर दो महिला सिपाही तैनात थीं। जूही और शांति। ध्यान देने की बात है कि उस बैंक की मैनेजर भी महिला ही हैं-श्रेया।'

'मगर हुआ क्या, दादाजी?' सुमन ने जल्दी ही असली बात जाननी चाही। 'वही तो बताने जा रहा हूं।'

दादाजी ने बात को आगे बढ़ाया, 'जूही और शांति बहुत ही सतर्क रहती थीं। बैंक में कोई फालतू आदमी तो नहीं जा रहा है, इस पर नजर रखने के लिए हर आगंतुक की पूरी तरह से जांच-पड़ताल करती थीं।'

दादाजी ने चाय की एक और चुस्की लेते हुए कहना जारी रखा 'ऐसे ही व्यस्त कामकाजी दिन में वे दोनों आनेवालों से बैंक में उनके काम के बारे में पूछ रही थीं। तभी एक साथ पांच युवक दो मोटरसाइकिल से उतरकर दरवाजे के अंदर जाने लगे। गेट पर तैनात जूही ने सवाल किया, 'क्या काम है आप लोगों को?' 'पैसा निकालना है।' एक ने कहा और सबने हामी भरी। 'पासबुक दिखाइए', दूसरी सिपाही शांति ने कहा। 'तुम कौन होती हो पासबुक देखने वाली?' एक युवक ने तुनक कर पूछा। तभी दूसरे युवक ने बंदूक तान दी, 'हम बैंक लूटने आए हैं। चुपचाप हाथ ऊपर करो।' 'तुम्हारी इतनी हिम्मत!' शांति ने निडर हाथों से बंदूक पकड़ ली। फिर तो दोनों तरफ से छीना-झपटी होने लगी।

एकाएक जूही ने फुर्ती से पिस्तौल निकालकर निशाना साधने की गरज से कहा, 'हिलना मत, वरना यहीं भूनकर रख दूंगी।' उसी समय अचानक सड़क पर खड़ी एक औरत चिल्ला उठी, 'दौड़ो-दौड़ो-बचाओ-बचाओ-बैंक लुटेरे आ गए हैं।' औरत का शोर सुनकर सड़क पर आते-जाते लोग बैंक की तरफ दौड़ पड़े। बेतहाशा भीड़ उमड़ पड़ी। इस घटनाक्रम से पांचों लुटेरे हड़बड़ा गए। वे जैसे-तैसे हाथ छुड़ाकर भाग खड़े हुए। पांचों ने पैदल ही सरपट दौड़ लगा दी।

हंगामे की आवाज सुनकर ग्राहकों, कर्मचारियों के साथ मैनेजर श्रेया बाहर आईं। उमड़ी भीड़ को देखकर उन्होंने मामले की गंभीरता को भांप लिया। सबने पूरी कहानी कह सुनाई। फिर तो पुलिस बुलाई गई। खुद पुलिस अधीक्षक बैंक में आ पहुंचे। लुटेरों की मोटरसाइकिलें जब्त कर ली गईं। सीसीटीवी कैमरे में पूरी घटना साफ दिख रही थी। पुलिस अधीक्षक सीसीटीवी फुटेज के उस दृश्य को बार-बार देख रहे थे, जिसमें दोनों महिला सिपाही गुंडों से भिड़ जाती हैं। उन दोनों के चेहरों पर एक क्षण के लिए भी भय नहीं दिखा। दिखा तो बस यह जज्बा कि हम लुटेरों को किसी भी कीमत पर बैंक के अंदर नहीं घुसने देंगे। दोनों की चुस्ती-फुर्ती देख सभी लोग दंग हो रहे थे।

एकाएक जूही ने फुर्ती से पिस्तौल निकालकर निशाना साधने की गरज से कहा, 'हिलना मत, वरना यहीं भूनकर रख दूंगी।' उसी समय अचानक सड़क पर खड़ी एक औरत चिल्ला उठी, 'दौड़ो-दौड़ो-बचाओ-बचाओ-बैंक लुटेरे आ गए हैं।' सुनकर सड़क पर आते-जाते लोग बैंक की तरफ दौड़े। बेतहाशा भीड़ उमड़ पड़ी।

एसपी साहब ने दोनों महिला सिपाहियों की तारीफ करते हुए कहा, 'बेटियो! हमें तुम पर गर्व है। तुम्हारी निडरता, वीरता और साहस के लिए पुलिस विभाग तुम दोनों को पुरस्कृत-सम्मानित करेगा। तुमने अपनी जान की परवाह नहीं की। बैंक की लाखों की संपत्ति और जान-माल की सुरक्षा की। शाबाश जूही! शाबाश शांति! तुम जैसी जांबाज सिपाहियों ने स्त्री-सशक्तीकरण की एक नई कहानी लिखी है। देखना, आने वाले समय में तुम दोनों के ये वीडियो फुटेज पूरी दुनिया देखेगी।'

दादाजी ने गौर से कहानी सुन रही अपनी पोती को अखबार में छपी दोनों सिपाहियों की तस्वीरें भी दिखाईं। 'यह तो सचमुच खास खबर है!' सुमन ने रोमांचित होते हुए कहा, 'दादाजी! मैं भी पुलिस में जाऊंगी।' 'शाबाश सुमन!' दादाजी ने सुमन की पीठ ठोंकी। उन्हें ऐसा लग रहा था जैसे जूही और शांति को ही शाबाशी दे रहे हों। वे सोचने लगे, एक समय ऐसा था, जब लड़कियों के लिए काम के लिए कुछ चुनिंदा क्षेत्र ही थे। अब लड़कियां हर क्षेत्र में काम कर रही हैं, और किसी से कम नहीं हैं। वे अपनी पोती सुमन के लिए भी यही सपना देखते थे कि जहां भी काम करे, जैसा भी काम करे, हमेशा हौसले और ईमानदारी के साथ रहे।

सुमन ने कहा, 'दादाजी, आज आपने इस कहानी पर कुछ ज्यादा ही सोच लिया। आपकी तो चाय ही ठंडी हो गई। रुकिए मैं दूसरी चाय बना कर लाती हूं।' दादाजी ने दूसरी चाय के लिए मना कर दिया। आज उन्हें ठंडी चाय भी अच्छी लग रही थी।

दीक्षांत का हलवा समारोह

जनसत्ता सरोकार

'कोई लड़की जब ससुराल जाती है और पहले दिन उससे हलवा बनाने को कहा जाता है तो वह मोबाइल से देखकर कच्चा-पक्का हलवा बनाती है। फिर सास की गालियां सुनती है कि तेरी मां ने क्या सिखाया...इसलिए मैं कहती हूं कि महिलाओं को कम से कम खाना बनाना आना चाहिए। आप टीचर बनो, आइएएस बनो, उससे पहले एक एक्सपर्ट मां बनो...।' कानपुर के दीक्षांत समारोह में उत्तर प्रदेश की राज्यपाल आनंदी बेन पटेल ने अपने भाषण में ये बात कही तो दूर तलक फैल गई। जिस जगह पर लड़कियों ने मेहनत से पढ़ाई कर पदक और डिग्री हासिल किए, वहां राज्य की राज्यपाल कह रही हैं कि हलवा बनाना नहीं सीखा तो सब व्यर्थ है।

सत्ता के शीर्ष पर बैठी स्त्री जब ऐसा कह रही है तो आम धारणा क्या बनेगी? राज्यपाल कह रही हैं कि सास की गालियां सुनती हैं...कौन है यह सास जो गालियां देती है? क्या गालियां देना एक संवैधानिक कर्म है, जो सास नामक संस्था को करना ही चाहिए। ध्यान दिया जाए कि यहां पर स्त्री के खिलाफ, एक स्त्री को ही खलनायिका बनाया

मार्गदर्शन

जा रहा है। बड़ी ही चालाकी से एक स्त्री यानी सास को पितृसत्ता बनाए रखने का औजार साबित किया जा रहा है। वह बहू की शिक्षा-दीक्षा नहीं सिर्फ रसोई में उसकी काबिलियत देखेगी और हां, गाली देगी। सास अपनी बहू को किसकी सत्ता बनाए रखने के लिए गाली देगी? पति, ससुर और देवर की सत्ता बनाए रखने के लिए सास बहू को गाली देगी। 'क्योंकि सास भी कभी बहू थी' की तर्ज पर तो यह भी मान कर चलें कि सास को उसकी सास ने भी गाली दी ही होगी।

खाना बनाना जब भी आर्थिक उत्पादन का साधन होता है तो वहां पर पुरुषों का कब्जा हो जाता है। दुनिया के ज्यादातर सितारा होटलों में पुरुष ही मुख्य खानसामे होते हैं। आज जब यूट्यूब से पैसे हासिल हो रहे हैं तो क्या औरत और क्या मर्द, सभी खाना बना रहे हैं। इन दिनों यूट्यूब पर खाना बनाने के वीडियो देखेंगे तो लगेगा कि भारतीय मर्द हमेशा से ही खाना बनाते रहे होंगे। स्त्रियों ने खाना बनाने से लेकर खाना कमाने तक का सफर तय करने में बहुत संघर्ष किया है।

इतिहास के पायदान पर स्त्रियां दोयम दर्जे की इसलिए रहीं क्योंकि उन्हें खाना कमाने नहीं, खाना बनाने की कतार में रखा गया था। आज जब स्त्री खाना कमाने वाले दीक्षांत समारोह की कतार में है तो उससे कहा जा रहा है कि पहले हलवा बनाने की दीक्षा लो, पहले मां बनने की दीक्षा लो। ऐसा कह कर उन लड़कियों के समकक्ष लड़कों के लिए संदेश दे दिया कि भले ही लड़कियां खाना कमाने वाली कतार में आकर खड़ी हो जाएं लेकिन सत्ता उन्हें याद दिला देगी कि तुम्हें मेडल खाना बनाने में हासिल करना है। लड़कों का काम हलवा खाना है और लड़कियों का काम हलवा बनाना है।

सत्ता के शीर्ष पर पहुंची स्त्री भी जब लड़कियों को खाना बनाने वाले की कतार में ही खड़ी कर दे तो समझिए कि राजनीतिक सत्ता में अभी भी पितृसत्ता की ही पैठ है।

मां के प्यार की परीक्षा लेता नन्हा चैत्या

जनसत्ता सरोकार

मां क्या तू मेरे लिए रोती है? आठ साल का चैत्या अपनी मां से बार-बार यह सवाल इसलिए पूछता है क्योंकि उसके दोस्त ने बताया है कि असली मां अपने बच्चे के लिए रोती है। मराठी फिल्म 'नाल' का आठ साल का नायक चैत्या बहुत छोटे सवाल उठाता है। बच्चे के यही सहज से छोटे सवाल नाल को बेहतरीन भावनात्मक फिल्मों में से एक बनाते हैं।

नागराज मंजुले की इस फिल्म का निर्देशन सुधाकर रेड्डी यक्कंती ने किया है। आठ साल का चैतन्य जिसे चैत्या के नाम से पुकारा जाता है, एक गांव में अपने मां-बाप और दादी के साथ रहता है। शरारती और संवेदनशील चैत्या को एक दिन पता चलता है कि जिसे वह अपनी मां मानता है, उसने उसे जन्म ही नहीं दिया है। इस एक तथ्य के सामने आने के बाद चैत्या के बाल-मन में द्वंद्व शुरू हो जाता है। वह अपनी मां पर शक करने लगता है कि क्या वह उसे सच में प्यार करती है! अपने आठ साल के जीवन अनुभव में वह एक ही सत्य को जानता है कि मां वही होती है, जो बच्चे को जन्म देती है।

अब मासूम चैत्या एक नन्हा मनोवैज्ञानिक बन जाता है। वह अपनी मां के प्यार को परखने लगता है। मां के असली प्यार की खोज में वह बहुत तरह की बचकानी हरकतें करता है। एक बार वह घर से

अमर किरदार

मासूम चैत्या एक नन्हा मनोवैज्ञानिक बन जाता है। वह अपनी मां के प्यार को परखने लगता है। मां के असली प्यार की खोज में वह बहुत तरह की बचकानी हरकतें करता है। एक बार वह घर से भागने की भी कोशिश करता है।

भागने की भी कोशिश करता है। इस फिल्म की खासियत यह है कि निर्देशक ने बाल-मन को बच्चे जैसा ही रखा है। उसके सवालों पर वयस्कता का बोझ नहीं डाला है। इसलिए फिल्म भावनात्मक रूप से बहुत सहज तरीके से आगे बढ़ती है। बिना किसी उत्तेजना और तनाव के चैत्या को अपने सवाल के जवाब मिलने लगते हैं। निर्देशक ने फिल्म का नाम 'नाल', गर्भनाल के संदर्भ में रखा है, जिससे मां और बच्चे का कुदरती रिश्ता जुड़ता है। धीरे-धीरे चैत्या को यह बात समझ में आ जाती है कि कोई मां, बच्चे को तब भी प्यार कर सकती है, जबकि उसे जन्म नहीं दिया हो। यानी मां बनने के लिए बच्चे को जन्म देना जरूरी नहीं है।

फिल्म गांव की पृष्ठभूमि में चलती है। गांव भी फिल्म के किरदार की तरह ही लगता है। 66वें राष्ट्रीय फिल्म पुरस्कारों में नाल को सर्वश्रेष्ठ प्रथम फिल्म का पुरस्कार मिला था। चैतन्य के रूप में श्रीनिवास पोकले ने कमाल का अभिनय किया है। मां सुमी का किरदार देविका दफ्तरदार तो पिता बप्पा का किरदार नागराज मंजुले ने खुद निभाया है। नाल 2018 में प्रदर्शित हुई थी। चैत्या की भावनात्मक यात्रा को आगे बढ़ाते हुए 2023 में नाल-2 भी प्रदर्शित हुई थी। फिल्म के दूसरे भाग में चैत्या अपनी जन्म देनेवाली मां पार्वती और पिता अजीनाथ से मिलने उनके गांव जाता है। वहां वह अपने सगे भाई-बहनों से भी मिलता है। उसका छोटा भाई मानसिक चुनौतियां झेल रहा है, इसलिए वह दुनिया को अपनी मासूम नजर से देखता है। छोटी बहन चिमी शुरू में चैत्या को भाई के रूप में स्वीकारने से कतराती है। चैत्या अब परिवार की परिभाषा में उलझता है।

जनसत्ता सरोकार

विविध

चार

जनसत्ता | 12 जुलाई, 2026

अखरोट का पोषण बढ़ाए बुद्धि और बल

नुस्खे

आयुर्वेद में अखरोट का महत्त्व बताया गया है। कई तत्त्वों से भरपूर इस सूखे मेवे का नियमित सेवन स्वास्थ्य संबंधी कई समस्याओं को दूर कर देता है। यह अकेला पौष्टिक मेवा है जो मस्तिष्क से लेकर हृदय, त्वचा और हड्डियों एवं पाचन तंत्र को स्वस्थ रखता है। सेहत बनाए रखने के लिए इसके कुछ नुस्खे बेहद कारगर साबित हुए हैं। अखरोट के पेड़ की भी खूबियां हैं। इसका न केवल फल, बल्कि इसके पत्ते से लेकर तने तक का औषधीय उपयोग होता है।

पोषण का खजाना

आयुर्वेद के मुताबिक यह केवल अखरोट ही है जो दिमाग को तेज करने के साथ शरीर को भी शक्ति प्रदान करता है। इसके सेवन से दिन भर ऊर्जा बनी रहती है। इसलिए अखरोट को सेहत का खजाना कहा जाता है। यह एंटीआक्सीडेंट और कई विटामिनों से भरपूर होने के साथ इसमें ओमेगा-3 फैटी एसिड भी पाया जाता है। हालांकि इसमें पर्याप्त कैलोरी होती है और इसके कई लाभ हैं। अखरोट में लौह तत्त्व के साथ मैग्नीशियम के अलावा विटामिन-ई और विटामिन बी भी पाए जाते हैं। अखरोट में इतने पोषक तत्त्व हैं कि यह कई मर्ज का उपचार कर देता है। इसलिए इसे नुस्खे के तौर पर भरोसे के साथ इस्तेमाल किया जाता है।

अनेक खूबियां

अखरोट केवल स्वास्थ्य का पोषण नहीं करता, बल्कि कई गंभीर मर्ज को दुरुस्त करने में भी मदद करता है। इसलिए इसमें एक नहीं, अनेक खूबियां हैं। अखरोट में 'पालीफेनाल्स' और 'एलाजिक' जैसे एंटीआक्सीडेंट भरपूर मात्रा में होते हैं। ये शरीर को नुकसान पहुंचाने वाले तत्त्वों से लड़ते हैं। साथ ही ये सूजन कम करने के साथ प्रोस्टेट और स्तन कैंसर के जोखिम को भी कम करते हैं। अखरोट रक्त शर्करा के स्तर को संतुलित रखता है। यह रक्त प्रवाह में शर्करा के रिसाव को धीमा कर देता है। यह कोलेस्ट्राल को प्राकृतिक रूप से नियंत्रित करने के साथ खराब कोलेस्ट्राल को भी कम कर देता है। इसे मस्तिष्क स्वास्थ्य के लिए भी अच्छा माना गया है। अखरोट की एक खूबी यह है कि यह हृदय के स्वास्थ्य को सुधारने में मदद करता है। इससे दिल के दौरे का जोखिम कम हो जाता है। टाइप-2 मधुमेह भी इससे काबू में रहता है। अखरोट खाने से रूखी और बेजान त्वचा में धीरे-धीरे चमक लौटने लगती है।

आजमाने के तरीके

अखरोट की खूबियों को देखते हुए कुछ सामान्य मर्ज के उपचार के लिए इसे प्राकृतिक विकल्प के रूप में आजमाना चाहिए। यह सुरक्षित होने के साथ कारगर है। एक आसान-सा नुस्खा है। दो-तीन अखरोट के टुकड़े रात में पानी में भिगो कर रख दें। सुबह इसे खाली पेट खाएं। इससे पाचन क्रिया तो दुरुस्त होगी ही, कब्ज की समस्या भी दूर होगी। दिन भर शरीर में स्फूर्ति भी बनी रहेगी। भीगे हुए अखरोट खाने से शरीर में इसके पोषक तत्त्व जल्दी ही घुल जाते हैं। इसे रोज खाने से याददाश्त और एकाग्रता भी बढ़ती है। पोषण

विशेषज्ञों के मुताबिक अखरोट का सीमित और नियमित सेवन करने से वजन भी नियंत्रित रहता है। दरअसल, इसमें फाइबर और प्रोटीन होने के कारण पेट देर तक भरा हुआ महसूस होता है। अखरोट को भून कर खाएं या दही में मिला कर या फिर सलाद में टुकड़े कर डाल लें। इसे दलिया में भी डाल कर लिया जा सकता है। यह हर तरह से उपयोगी है। यह बच्चों से लेकर बुजुर्गों तक के लिए फायदेमंद है।

निकोलस रोरिक की विरासत

कला-संस्कृति

चंद्र त्रिखा

विश्वभर में प्रख्यात चित्रकार निकोलस रोरिक एक बार फिर चर्चा में हैं। लगभग 151 वर्ष पहले नौ अक्तूबर, 1874 को रूस के सेंट पीटर्सबर्ग में जन्मे रोरिक ने अपनी जिंदगी का एक महत्त्वपूर्ण भाग भारत में गुजारा और यहीं पर 13 दिसंबर 1947 को अंतिम सांस ली। संभवतः वे विश्व के एकमात्र ऐसे कलाकार थे, जो रूस की बोल्शेविक क्रांति में शामिल थे और अंतिम दिनों में भारतीय अध्यात्म दर्शन में पूरी तरह रचे-बसे रहे। 'सोवियत साम्यवाद' से 'थियोसाफी' तक की उनकी जीवन-यात्रा बहुत कुछ सोचने पर विवश करती है।

एक लंबे अंतराल के बाद वे अपनी दो कलाकृतियों के कारण फिर से विश्वभर में चर्चा का केंद्र बने। निकोलस रोरिक की कलाकृति भारत और एक पाकिस्तानी नागरिक के बीच बरसों से विवाद का विषय बनी हुई है। पाकिस्तानी नागरिक जाहिद नजीर का दावा है कि ये कलाकृतियां रोरिक की पुत्रवधू देविका रानी ने उसके दादा को उपहार में दी थीं। ये दोनों कलाकृतियां- 'कंजनजंघा' और 'सनसैट' हिमालयी परिदृश्यों और आध्यात्मिक पृष्ठभूमि के लिए जानी जाती हैं। भारत सरकार का दावा है कि ये पेंटिंग भारत की सांस्कृतिक विरासत का हिस्सा हैं। 2009 में चोरी होने से पहले ये कलाकृतियां भारतीय कृषि अनुसंधान संस्थान (आइएआरआइ) के संग्रह का हिस्सा थीं। निकोलस रोरिक की पुत्रवधू देविका रानी की इस मामले में प्रमुख भूमिका रही। इस विवाद की सुनवाई एक ब्रिटिश अदालत में चल रही है।

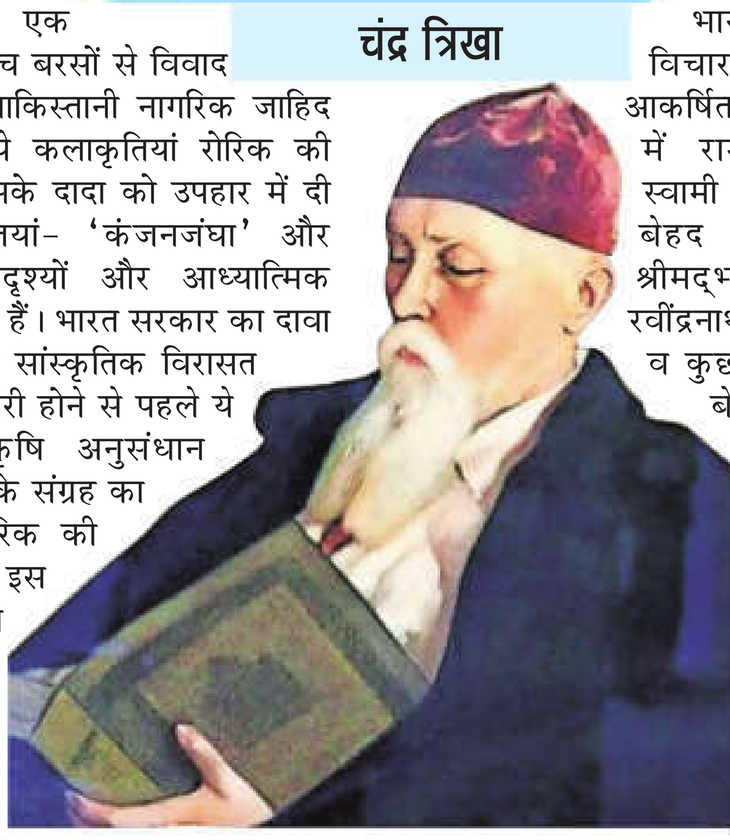

दार्शनिक चिंतक

निकोलस रोरिक अपनी पत्नी हेलेना के साथ 1928 में भारत के कुल्लू में बस गए और वे अपनी कला में हिमालयी अध्ययन और आध्यात्मिक विषयों के लिए विश्वभर में चर्चा में बने रहते थे। उन्होंने कला के क्षेत्र में 'रोरिक-संधि' नामक एक दस्तावेज बनाने में भी महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाई थी, जिसका उद्देश्य सांस्कृतिक और कलात्मक विरासतों की रक्षा करना था। ये पेंटिंग चोरी होने के कुछ ही महीनों बाद लंदन की प्रसिद्ध कला-नीलामी संस्था 'सोथबी' के पास पहुंच गई। दोनों का मूल्य लगभग चालीस लाख पौंड आंका गया।

पहले रूस और बाद में सोवियत संघ में रोरिक की पहचान एक चित्रकार, साहित्यकार व एक दार्शनिक चिंतक के रूप में बन चुकी थी। धीरे-धीरे उनकी जिज्ञासा अध्यात्म और रहस्यवाद की ओर झुकने लगी। ऐसी ही कुछ जिज्ञासाओं के समाधान की तलाश उन्हें पर्वतीय प्रदेश हिमाचल ले आई। उनका नाम कई बार नोबेल पुरस्कार के लिए भी प्रस्तावित हुआ। कलाकृतियों के अलावा 'आर्किटेक्चर' के क्षेत्र में भी धीरे-धीरे उनकी प्रसिद्धि विश्वभर में होने लगी। आज दोनों देश जिन भव्य इमारतों को ध्वस्त करने में लगे हैं, उन रूसी और यूक्रेनी कलात्मक धार्मिक इमारतों के 'डिजाइन' उन्होंने ही तैयार किए थे।

1910 के आसपास उन्हें भारतीय आध्यात्मिक विचारधारा 'थियोसोफी' ने आकर्षित किया। वे वेदांत के बारे में रामकृष्ण परमहंस और स्वामी विवेकानंद के लेखों से बेहद प्रभावित हुए। उन्हें श्रीमद्भगवत गीता और रवींद्रनाथ ठाकुर की 'गीतांजलि' व कुछ अन्य कविताओं ने भी बेहद प्रभावित किया। वेदांत के अलावा बौद्ध धर्म में भी उनकी दिलचस्पी बढ़ने लगी थी। इसी प्रभाव में उन्होंने अनेक कविताएं और कहानियां भी लिखीं। 1917 के आसपास उन्होंने रूसी लेखक मैक्सिम गोर्की के साथ मिलकर 'गोर्की-कमीशन' और 'दी आर्ट्स यूनियन' के बैनर तले सृजनशील आंदोलनों में भी भाग लिया।

नई वैचारिकता

वे 'वर्ल्ड आफ आर्ट सोसाइटी' के अध्यक्ष थे। बाद में उन्होंने पत्नी हेलेना और दो बेटों के साथ फिनलैंड का रुख किया। रोरिक साम्यवादी क्रांति के विरोधी नहीं थे, मगर वे लेनिन की नीतियों के विरुद्ध थे। 1919 में वे फिनलैंड से लंदन चले गए, जहां उनका संपर्क 'थियोसोफी' के कुछ महानायकों से हुआ। वे थियोसोफी में इतना रम गए कि उन्होंने 'अग्नियोग' के नाम से एक नई वैचारिकता को ईजाद किया। वहीं लंदन में ही रोरिक ब्रिटिश बौद्ध नेता क्रिसमस हम्फ्री, लेखक-चिंतक एचजी वेल्स और रवींद्रनाथ ठाकुर के संपर्क में आए। लंदन के बाद लगभग तीन वर्ष तक अमेरिका में 'अग्नियोग सोसायटी' चलाने के बाद रोरिक ने अपने बेटे जार्ज और छह मित्रों के साथ एशिया-भ्रमण की योजना बनाई।

> **पहले** रूस और बाद में सोवियत संघ में रोरिक की पहचान एक चित्रकार-पेंटर, साहित्यकार व एक दार्शनिक चिंतक के रूप में बन चुकी थी। धीरे-धीरे उनकी जिज्ञासा अध्यात्म और रहस्यवाद की ओर झुकने लगी। ऐसी ही कुछ जिज्ञासाओं के समाधान की तलाश उन्हें भारतीय पर्वतीय प्रदेश हिमाचल ले आई।

भारत का रुख

पहले चरण में सिक्किम और बाद में पंजाब, कश्मीर (विशेष रूप से लद्दाख, कराकोरम की पर्वत शृंखला) से होते हुए वे तिब्बत, साइबेरिया आदि स्थलों पर कुछ दिन बिताने के बाद 1926 में मास्को लौटे। रोरिक पूर्व की आध्यात्मिकता पर आधारित 'सेक्रेड यूनियन आफ ईस्ट' की स्थापना करना चाहते थे। वे यह भी चाहते थे कि बोल्शेविक नेता उन्हें इस लक्ष्य की प्राप्ति में मदद करें। मगर सोवियत नेता उनकी इस परिकल्पना को निरर्थक एवं कोरे आदर्शवाद की उपज मानते थे। उन्होंने इस मामले में कोई दिलचस्पी नहीं दिखाई। आखिर रोरिक, उनके मित्र और परिवार के सदस्य भारत में बसने के इरादे से इधर चले आए। यहां रोरिक ने 'हिमालयन-रिसर्च इंस्टीच्यूट' की स्थापना की। 1929 में उनका नाम पेरिस विश्वविद्यालय की ओर से नोबेल पुरस्कार के लिए भी प्रस्तावित हुआ। मगर उन्हें पुरस्कार नहीं मिल पाया था। इसी बीच वे इतने चर्चित एवं प्रसिद्ध हो गए थे कि अमेरिका और बीस अन्य देशों ने 1935 में वाइट हाउस में विश्व की सांस्कृतिक संपदा की रक्षा के लिए जिस संधि दस्तावेज पर हस्ताक्षर किए, उसे 'रोरिक दस्तावेज' के नाम से ही जाना जाता है।

संवादहीनता के बीच उम्मीद और निराशा

जीवन शैली

अपनी भावनाओं को व्यक्त किए बिना दूसरों से उम्मीदें रखना अक्सर निराशा और गलतफहमी का कारण बनता है। बिना बताए यह सोचना कि सामने वाला हमारी जरूरतों को समझ जाएगा या बिना संवाद किए दूसरे से किसी खास व्यवहार की आशा करना रिश्तों में कई तरह की चुनौतियां पैदा कर सकता है। आज के शिक्षित सामाजिक परिवेश में भी इस समस्या का दायरा बढ़ता जा रहा है। इस बात पर ध्यान कम ही दिया जाता है कि जब आप अपनी उम्मीदों, जरूरतों और भावनाओं को स्पष्ट रूप से साझा करते हैं, तो सामने वाले के लिए उन पर खरा उतरना आसान हो जाता है। रिश्तों में विश्वास और मजबूती का तत्त्व भरने के लिए नियमित संवाद बेहद जरूरी है। जब संवाद की धारा प्रवाहित होती है, तो भावनाओं को व्यक्त करने का संकोच स्वतः समाप्त हो जाता है।

आशंका से उपजा भय

भावनाएं मानव जीवन का एक अभिन्न हिस्सा हैं। वे हमारे व्यवहार का मार्गदर्शन करती हैं, निर्णय लेने में मदद करती हैं और हमारे आसपास की दुनिया को समझने एवं प्रतिक्रिया देने में अहम भूमिका निभाती हैं। हालांकि, कई बार भावनाओं का ज्यादा प्रवाह सही और गलत निर्णय के बीच अंतर को समझने के मार्ग में बाधक बन सकता है। इसलिए भावनाओं पर नियंत्रण भी जरूरी है। मगर, यह देखा जाता है कि इसी आशंका के भय के कारण अक्सर लोग अपनी भावनाओं को दबा देते हैं और फिर उम्मीद करते हैं कि सामने वाला उनकी जरूरतों और अपेक्षाओं को स्वतः ही समझ जाएगा। हालांकि, कुछ लोग सामने वाले के हाव-भाव को देखकर उनकी अनकही भावनाओं को समझ जाते हैं, लेकिन ज्यादातर मामलों में ऐसा नहीं होता, जिससे रिश्तों में गलतफहमी और निराशा का भाव पनपने लगता है।

अभिव्यक्ति का लहजा

भावनात्मक अभिव्यक्ति सिर्फ शब्दों का रूप नहीं होती है, बल्कि इसमें लहजे का तत्त्व भी शामिल होता है। इसका मतलब यह है कि भले ही हम शब्दों का उपयोग करके स्पष्ट रूप से यह बता सकते हैं कि हम क्या महसूस कर रहे हैं, लेकिन हमारा लहजा उन शब्दों को विशेष रूप से संसाधित कर उस भाव को व्यक्त करता है। इसी से तय होता है कि अभिव्यक्त की गई भावना का सामने वाले पर कितना गहरा प्रभाव होता है। यही वजह है कि कई बार किसी व्यक्ति की व्यक्त भावनाओं का सामने वाले पर विपरीत असर पड़ता है, जो रिश्ते को मजबूत करने के बजाय उसे और चुनौतीपूर्ण बना देता है।

> **भावनाओं** को दबाने से भ्रम की स्थिति पैदा होती है। इससे मानसिक और शारीरिक स्वास्थ्य पर भी नकारात्मक प्रभाव पड़ सकता है। कई बार उसके परिणाम निराशा से भरे हो सकते हैं।

सामंजस्य की कड़ियां

भावनाओं को दबाने से न केवल भ्रम की स्थिति पैदा होती है, बल्कि इससे मानसिक और शारीरिक स्वास्थ्य पर भी नकारात्मक प्रभाव पड़ सकता है। कई बार उसके परिणाम निराशा से भरे हो सकते हैं, जो चिंता और तनाव का कारण बन सकते हैं। अपनी भावनाओं को लगातार नजरअंदाज करने से अंततः आत्मविश्वास भी कमजोर होने लगता है। समय के साथ हमें ऐसा महसूस हो सकता है कि हमारी जरूरतों या इच्छाओं की किसी को परवाह नहीं है और हमारी राय का कोई महत्त्व नहीं है। इसलिए किसी भी रिश्ते में संवाद का खुला माहौल होना जरूरी है, ताकि भावनाओं को आसानी से व्यक्त किया जा सके और आपसी समझ एवं सामंजस्य कायम रहे।

मिर्गी की मुश्किल संबल देना जरूरी

सेहत

कई साल पहले किसी को मिर्गी की बीमारी हो जाती थी, तो परिवार के लोग चिंतित हो उठते थे। मगर सच यही है कि मिर्गी तंत्रिका तंत्र की सबसे आम बीमारियों में से एक है। विश्व भर में लाखों लोग इससे पीड़ित हैं। सामान्य रूप से मिर्गी से जान का जोखिम नहीं होता, लेकिन जब दौरे पड़ते हैं, तो मरीज बेहोश हो जाता है। आखिर इसकी क्या वजह होती है? दरअसल, तंत्रिका कोशिकाओं में किसी असामान्य रासायनिक परिवर्तन के कारण दौरे पड़ते हैं। मिर्गी किसी को भी हो सकती है। ध्यान रखें कि बहुत तेज बुखार या सिर में लगी चोट के कारण सदमे या दौरे को मिर्गी नहीं मानना चाहिए। इस रोग के प्रति सचेत रहना चाहिए। मिर्गी के मरीज को भावनात्मक संबल की जरूरत होती है। उसके लिए यह बहुत बड़ा सहारा रहता है।

रोग की चुनौतियां

मिर्गी कोई मानसिक विकार नहीं है। इसे ऐसे समझा जा सकता है कि जब मस्तिष्क की कोशिकाएं ठीक से काम नहीं करतीं, तो जटिलता पैदा होती है। कुछ मामलों में मिर्गी को आनुवांशिक भी पाया गया है। मगर मिर्गी होने के अन्य कारण भी हैं। एक वजह सिर में लगी कोई घातक चोट या संक्रमण हो सकती है, वहीं तंत्रिका कोशिका में किसी दिक्कत की वजह से भी यह समस्या पैदा हो सकती है। ऐसे मरीज अचानक अपनी चेतना खोने लगते हैं। उस समय उसे तुरंत संबल देने और संभालने की जरूरत होती है। कभी-कभी सिर के किसी हिस्से में हुए कोई नुकसान के कारण किसी तंत्रिका में आई समस्या भी मिर्गी हो सकती है। ऐसे मरीज की समुचित देखभाल होनी चाहिए।

लक्षणों की पहचान

मिर्गी के मरीजों के लक्षण कभी-कभी समझ नहीं आते। दरअसल, मिर्गी दो प्रकार की होती है। पहला सामान्य और दूसरा आंशिक। पहले प्रकार की मिर्गी पर गौर करें, तो इसमें मरीज आमतौर पर अपना होश खो बैठता है। जबकि आंशिक मिर्गी में भी सचेत रहने की जरूरत होती है। इसमें मस्तिष्क के एक विशिष्ट क्षेत्र की तंत्रिका में किसी अवरोध या विकार के कारण समस्या पैदा होती है। इस तरह मिर्गी के लक्षण अलग-अलग होते हैं। कई मामलों में बार-बार एक ही तरह से दौरे पड़ते हैं। मरीज भयभीत और गुस्से में दिखाई देता है। कुछ देर के लिए वह खुद भ्रम में बना रहता है। उसे पता ही नहीं होता कि उसके साथ क्या हो रहा है। वह हाथ-पैर मरोड़ने लगता है। ध्यान रखने की जरूरत है कि मिर्गी जैसे लक्षण 'पैनिक अटैक' और माइग्रेन में भी दिखते हैं।

राहत की राह

मिर्गी के मरीज को पूरी तरह तनावमुक्त रखने और उन्हें दिलासा दिलाने की जरूरत होती है। दौरे के बाद मरीज को पूरी तरह आराम करने दें। आम तौर पर मिर्गी के मरीजों को संभालना आसान नहीं होता। उसके आसपास मौजूद लोग उसकी स्थिति देख कर विचलित हो जाते हैं। मगर समय रहते मरीज को संभाल लिया जाए, तो स्थिति जटिल होने से बचा जा सकता है। मिर्गी के मरीज को दौरा पड़ने पर ऐसी जगह लिटा देना चाहिए जिससे उसे आराम मिले और वह सहज महसूस करे। उसकी मदद कर रहे लोग घबराए नहीं, बल्कि उस समय मरीज को सामान्य स्थिति में लाने की कोशिश करें और चिकित्सक से संपर्क करें।

निदान के उपाय

मिर्गी का इलाज अब आसानी से होता है। चिकित्सक कुछ विशिष्ट दवाओं से उपचार करते हैं। दौरे के प्रकार, रोगी की उम्र और कितनी देर तक दौरा पड़ता है, इसके आधार पर दवाइयों का चयन किया जाता है। तनाव कम करके और जीवन शैली में बदलाव लाकर मिर्गी के मरीजों को स्वस्थ करने की कोशिश की जाती है। ऐसे मरीजों को संतुलित आहार दिया जाता है। मरीज को किसी भी तरह के नशे से बचने की हिदायत दी जाती है। ऐसे मरीज को तनावमुक्त माहौल में रहने के लिए कहा जाता है।

(यह लेख सिर्फ सामान्य जानकारी और जागरूकता के लिए है। उपचार या स्वास्थ्य संबंधी सलाह के लिए विशेषज्ञ की मदद लें।)

स्वाद का खजाना, आसान है बनाना

रसोई

पनीर पकौड़ा

नाश्ते में अगर ऊर्जा से भरपूर कुछ लेना हो, तो पनीर के पकौड़े बेहतर विकल्प है। स्वाद के साथ-साथ ये सेहत के लिए भी लाभदायक हैं। बच्चे अगर बाजार से कोई नमकीन लाने की जिद करें, तो उसकी जगह उन्हें पनीर के पकौड़े परोसे जा सकते हैं। इन्हें बनाने में ज्यादा वक्त नहीं लगता और जायका भी बेहतरीन होता है।

सामग्री

पनीरः 250 ग्राम, बेसनः 100-120 ग्राम, अदरकः एक इंच, लहसुनः पांच-छह कलियां, लाल मिर्च पाउडरः एक चम्मच, चाट मसालाः एक चम्मच, कसूरी मेथीः एक चम्मच, हल्दीः आधा चम्मच, हींगः एक चुटकी, नमकः स्वादानुसार।

विधि

सबसे पहले पनीर को मध्यम आकार के चौकोर टुकड़ों में काट लें। फिर अदरक और लहसुन को छील कर उसका पेस्ट तैयार करें। अब एक कटोरे में पनीर के टुकड़े डालें और उसमें अदरक-लहसुन का पेस्ट, लाल मिर्च पाउडर, चाट मसाला, कसूरी मेथी तथा नमक मिलाएं। इन सबको हाथ से अच्छी तरह मिलाएं, ताकि मसालों का मिश्रण पनीर के चारों ओर चिपक जाए। इसे दस-पंद्रह मिनट तक ढक कर रख दें। इस बीच, एक अन्य कटोरे में बेसन, हल्दी, लाल मिर्च पाउडर, हींग, चाट मसाला और नमक डालें। इन सभी को हाथ से अच्छी तरह मिला लें। इसके बाद कटोरे में थोड़ा-थोड़ा करके पानी डालें और उसे बड़े चम्मच से घोलते रहें। ध्यान रहे कि पानी उतना ही डालें कि बेसन का घोल गाढ़ा बने। इस घोल को ठीक से देख लें कि कहीं गांठ न रहे, अगर ऐसा हो तो उसे चम्मच या हाथ से मसल कर घोल दें। अब इसमें एक चुटकी बेकिंग सोडा डालें और अच्छी तरह मिलाएं। इसके बाद पनीर के टुकड़े बेसन के घोल में डालें और हाथ से मिला लें। अब एक कड़ाही में तेल गरम करें और थोड़ा-थोड़ा करके पनीर के टुकड़ों को कड़ाही में डालकर सुनहरा रंग आने तक तलें। इन्हें गरमागरम चाय या चटनी के साथ परोसें।

सोया पुलाव

सोया पुलाव बनाना आसान है। सोया प्रोटीन से भरपूर होती है, इसलिए यह सेहत के लिए भी फायदेमंद होती है। अगर इसे देसी घी में बनाया जाए, तो इसका स्वाद लाजवाब होता है।

सामग्री

चावलः 150-200 ग्राम, सोया बड़ीः 100 ग्राम, लाल मिर्च पाउडरः एक चम्मच, हल्दीः आधा चम्मच, काली मिर्चः तीन-चार, लौंगः दो-तीन, जीराः एक चम्मच, गरम मसालाः एक चम्मच, प्याजः एक, अदरकः एक इंच, लहसुनः चार-पांच कलियां, टमाटरः दो, नमकः स्वादानुसार।

विधि

सोया बड़ी को तीन-चार घंटे पानी में भिगोने के लिए रख दें या उन्हें उबाल लें। फिर इन्हें अच्छी तरह निचोड़ लें, ताकि इनमें से पानी निकल जाए। अब इन्हें एक थाली में डालकर दही, नमक, मिर्च पाउडर तथा हल्दी डालें और हाथ से अच्छी तरह मिला लें। इसे दस-बारह मिनट के लिए ढक कर रख दें। इसके बाद चावल को धोकर करीब बीस मिनट तक पानी में भिगो लें। इसी बीच प्याज, अदरक, लहसुन और टमाटर बारीक काट लें। फिर एक कड़ाही में तेल या देसी घी गरम करें और उसमें जीरा, लौंग, काली मिर्च तथा तेज पत्ता भून लें। अब इसमें कटा हुआ प्याज तथा लहसुन डालें और हल्का सुनहरा रंग आने तक भूनें। इसके बाद इसमें अदरक और हरी मिर्च डालकर भून लें। फिर बारीक कटे हुए टमाटर डालें और थोड़ा सा पानी डालकर कड़ाही पर ढक्कन रख कर आंच धीमी कर दें। इसे तब तक पकाएं, जब तक टमाटर की गाढ़ी तरी न बन जाए। अब इसमें भिगोई हुई सोया बड़ी डालें और ढक्कन लगाकर दो-तीन मिनट तक पकाएं। फिर इसमें चावल डालें और जरूरत के मुताबिक पानी, नमक तथा गरम मसाला डालकर धीमी आंच पर पकाएं। इसे बीच-बीच में चम्मच से चलाते रहें। जब चावल पक कर नरम हो जाए, तो आंच बंद कर दें। अब सोया पुलाव बनकर तैयार है, इसे थोड़ा ठंडा होने पर परोसें।